मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 49 ● वर्ष 6, अंक 4 ● (संयुक्तांक) जून 2016 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

चॉकलेट उद्योग का ग़ुलाम बचपन 5

आर्थिक संकट के बीच बढ़ता वैश्विक व्यापार युद्ध का ख़तरा 15

"अच्छे दिनों" की बुरी हक़ीक़त! 16

सभी मोर्चों पर नाकाम मोदी सरकार और संघ परिवार पूरी बेशर्मी से नफ़रत की खेती में जुट चुके हैं!

इनके गन्दे इरादों को रोकने के लिए मेहनकशों को एकजुट होना होगा वरना ये पूरे देश को ख़ून के दलदल में तब्दील कर देंगे

सम्पादक मण्डल

जनता से किये गये अपने किसी भी चुनावी वायदे को पूरा करने में नाकाम मोदी सरकार और उसका मालिक संघ परिवार अब पूरी नंगई और बेशर्मी के साथ फिर अपने असली खेल, यानी नफ़रत की खेती करने में जुट गये हैं ताकि आने वाले चुनावों में वोटों की फसल काटी जा सके। इस खेती को जनता के ख़ून से सींचने में कोई कमी न रह जाये इसलिए जगह-जगह संघी संगठनों के प्रशिक्षण शिविर लगाकर हिन्दू युवकों और बच्चों को मारकाट मचाने की ट्रेनिंग भी दी जा रही है। रोज़गार देने, महँगाई कम करने, अपराध रोकने, भ्रष्टाचार पर रोक लगाने जैसे सारे दावों के हवा हो जाने के बाद उनके पास अब कोई चारा भी नहीं है कि समय से पहले ही अपना नकली सदाचारी दुपट्टा उतार फेंकें और सीधे-सीधे हिंसा और घृणा का घिनौना खेल शुरू कर दें।

वैसे तो दो साल पहले भाजपा के सत्ता में आने के साथ ही समाज को बाँटने और इतिहास के पहिये को उल्टा घुमाने का चक्कर शुरू हो गया था। लेकिन दो साल में मोदी के मुखौटे के एकदम नंगा हो जाने और सरकार के विरुद्ध चौतरफा असन्तोष बढ़ते जाने के कारण अब ये काम बिल्कुल नंगई से किया जा रहा है। देश के सबसे बड़े सूबे उत्तर प्रदेश में अगले वर्ष होने वाले चुनाव को देखकर ये पूरी तरह बौरा गये हैं। कैराना में हिन्दुओं के पलायन के झूठे मुद्दे को लेकर जिस बेशर्मी के साथ ये साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की गन्दी कोशिश में लग गये हैं उससे यह साफ है कि अगर लोगों ने एकजुट होकर इनके ख़ूनी इरादों और साज़िशों का जवाब नहीं दिया तो इस बार ये मुज़फ़्फ़रनगर से भी ज़्यादा बड़ा क़त्लेआम करायेंगे – और अगर ये अपने इरादे में कामयाब रहे, तो 2019 में लोकसभा चुनाव के पहले इसी मॉडल को चारों तरफ लागू करके पूरे देश को ख़ून के दलदल में तब्दील कर देंगे।

फासीवाद वास्तव में सड़ता हुआ पूँजीवाद होता है। पूँजीवाद के आर्थिक संकट के गहराने के साथ ही पूरी दुनिया में फासिस्ट ताक़तें सर उठा रही हैं। क्योंकि संकट में फँसे पूँजीवाद के लिए अपने को बचाने का एक ही तरीका होता है, और वह है जनता को और भी कसकर निचोड़कर अपने मुनाफ़े को बनाये रखना। इसके लिए उसे ऐसे आन्दोलन की ज़रूरत होती है जो सत्ता में बैठकर डण्डे के ज़ोर पर मेहनतकशों की हड्डियाँ पूरी ताक़त से निचोड़े और दूसरी तरफ समाज में आपसी नफ़रत फैलाकर लोगों को इस क़दर बाँट दे कि वे अपनी तबाही-बर्बादी के बारे में न सोच पायें और न ही इसके विरुद्ध लड़ पायें। भारत में भी यही हो रहा है। मोदी की स्टार्टअप, स्टैंडअप, मेक इन इंडिया जैसी तमाम योजनाओं और सैकड़ों करोड़ रुपये उड़ाकर विदेशों के अन्धाधुन्ध दौरों के बावजूद अर्थव्यवस्था बिल्कुल ठप है। रोज़गार पैदा नहीं हो रहा है क्योंकि

(पेज 10 पर जारी)

किसानों-खेत मज़दूरों की बढ़ती आत्महत्याएँ और कर्ज़ की समस्या

ज़िम्मेदार कौन है? रास्ता क्या है?

बीती 26 अप्रैल को पंजाब के बरनाला ज़िले के जोधपुर गाँव में सूदखोरों का कर्ज़ा चुका पाने में असमर्थ किसान और उसकी माँ द्वारा ज़हरीली दवाई पीकर ख़ुदकुशी करने की भयानक घटना ने एक बार फिर से राज्य के संवेदनशील लोगों को हिला कर रख दिया। किसान बलजीत के पास 2 एकड़ ज़मीन थी और उसके बाप पर तेजा सिंह नाम के सूदख़ोर का कर्ज़ा था जो उनके मरने के बाद बलजीत के सिर आ गया। कई तरह की हेरा-फेरियों, ज़्यादा ब्याज लगाने और सरकारी महकमों में जोड़-तोड़ करके तेजा सिंह ने बलजीत की ज़मीन अपने नाम करा ली। जब तेजा सरकारी अधिकारियों और पुलिस के साथ ज़मीन पर कब्ज़ा करने आया तो गाँव के लोगों की मौजूदगी में बलजीत सिंह ने घर की छत पर चढ़कर ज़हरीली दवाई पी ली, उसको देखकर उसकी मां बलबीर कौर ने भी बाकी की दवाई पी ली और अस्पताल ले जाते समय दोनों की मौत हो गयी। यह त्रासदी कृषि प्रधान राज्य पंजाब में खेती के संकट में जी रहे ग़रीब किसानों और मज़दूरों की दर्दनाक हालत को दिखाने वाली एक प्रतिनिधि घटना है।

राज्य के अख़बारों में लगभग रोज़ ख़ुदकुशी की कोई नयी ख़बर छपती है। ऐसी ख़बरों के कुछ अंश हम यहाँ दे रहे हैं। पंजाबी ट्रिब्यून 27 अप्रैल के संपादकीय के अनुसार, "पंजाब में इस समय औसतन हर दो दिनों में तीन किसान कर्ज़े के बोझ के कारण ख़ुदकुशी करते हैं। केन्द्रीय कृषि राज्यमंत्री की ओर से संसद में पेश किये गये आँकड़ों के अनुसार पंजाब में इस साल 11 मार्च तक 56 किसानों ने ख़ुदकुशी की है जबकि अख़बारी रिपोर्टों के अनुसार सिर्फ अप्रैल महीने में 26 तारीख तक 40 किसान आत्महत्या कर चुके हैं। किसान ख़ुदकुशियों के मामले में महाराष्ट्र के बाद पंजाब देश में दूसरे नम्बर पर आ गया है। राज्य के तीन विश्वविद्यालयों की ओर से किये गये सर्वेक्षण के अनुसार 2000 से 2011 के दौरान राज्य में कृषि से सम्बन्धित 6926 व्यक्तियों ने ख़ुदकुशी की जिनमें से 3954 किसान और 2972 खेत मज़दूर थे। पंजाब सरकार ने 2011 के बाद किसानों और खेत मज़दूरों की ख़ुदकुशियों के बारे में ना तो कोई नया सर्वेक्षण करवाया है और ना ही इनका रिकार्ड रखने के लिए कोई तंत्र क़ायम किया है जबकि इस समय के दौरान कृषि संकट और गहरा होने के कारण ख़ुदकुशियों की गिनती में बहुत ज़्यादा वृद्धि हुई है।'' यहाँ देखा जाये तो सबसे ज़्यादा ख़ुदकुशियाँ संगरूर (1,132), फिर मानसा (1,013) और बठिंडा (827) में हुई हैं।

यह तस्वीर सिर्फ पंजाब की ही नहीं बल्कि पूरे भारत की है। देश में सबसे ज़्यादा, 45 प्रतिशत किसानों की आत्महत्याएँ महाराष्ट्र में होती हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार जनवरी से जून 2015 के दौरान 1300 किसानों ने ख़ुदकुशी की, मतलब रोज़ाना 7 किसानों ने ख़ुदकुशी की। पंजाब कृषि यूनिवर्सिटी, लुधियाना के डा. सुखपाल अपने लेख में लिखते हैं, "राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार 2012 में देश में हर रोज़ 46 किसान ख़ुदकुशी करते थे। भारत में बड़े स्तर पर ख़ुदकुशियों का सिलसिला नयी आर्थिक नीतियाँ लागू होने के बाद 1990 के आखिर में देखने को मिलता है। 1997 से 2006 के दौरान 10,95,219 व्यक्तियों ने ख़ुदकुशी की, जिनमें से 1,66,304 किसान थे। किसानों का यह आँकड़ा अब बढ़कर तीन लाख

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

नमस्कार साथी ! मैं नियमित रूप से 'मज़दूर बिगुल' पढ़ता हूँ। यह पत्रिका हर अंक में वर्तमान समाज और सत्ता के वास्तविक चरित्र को प्रतिबद्धता के साथ प्रस्तुत करती है। आज जब मुख्यधारा की मीडिया पर धनपशुओं का कब्ज़ा हो ऐसे समय में आम जनता की आवाज का कुचला जाना आम बात है। 'बिगुल' ऐसे जनविरोधी तंत्र के प्रतिपक्ष में खड़े होकर जनहित की लड़ाई में शामिल है , यह हमारे लिए उम्मीद की बात है।

बिगुल के साथियों को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ।

— अनुज लुगुन

मालिकों की नज़र में मज़दूर मशीनों के पुर्जे हैं

बजाज सन्स लिमिटेड (सी-103, फेस-5, फोकल प्वांइण्ट, लुधियाना) में 28 मई 2016 को रात पौने एक बजे बिरसा नाम के मज़दूर की दाएँ हाथ की दो उँगलियाँ (जहाँ तक उँगली में नाख़ून होता है) पावरप्रेस में कट गयी हैं। बिरसा जिस पावरप्रेस पर काम कर रहा था उसका क्लच ढीला था और सेंसर भी नहीं लगा था। बिरसा ने फोरमैन अवधेश को बताया कि मशीन का क्लच ढीला है ठीक करा दो। लेकिन फोरमैन ने अवधेश की बात पर ध्यान नहीं दिया और मशीन चलाते रहने के लिए कहा। बिरसा जैसे ही मशीन पर काम करने लगा उसके बीस मिनट बाद खबर मिली कि बिरसा की दो उँगलियाँ कट गयी हैं। लेकिन बेशर्म फोरमैन अवधेश अभी भी अपनी ग़लती मानने के लिए तैयार नहीं था। उलटा वो बिरसा को ही दोष दे रहा है। उसको लगता है कि बिरसा ने जानबूझकर अपनी उँगली मशीन में डाली है। जैसे बिरसा को अपनी उँगलियों से प्यार ही न हो।

इस हादसे का ज़िम्मेवार सिर्फ अवधेश ही नहीं है बल्कि कम्पनी मैनेजमैंट और मालिकान भी हैं। स्टाफ में गिने जाने वाले फौरमैनों आदि की सोच ही ऐसी बना दी जाती है कि मज़दूर तो कामचोर होते हैं। उनपर मज़दूरों से अधिक से अधिक काम लेने का दबाव बनाया जाता है। उनसे कहा जाता है कि वे कम्पनी का ज़्यादा से ज़्यादा पैसा बचाएँ। मालिक और मैनेजमैंट के ही कहने पर प्रेस मशीनों से सैंसर आदि हटा दिये जाते हैं या खराब होने पर ठीक नहीं करवाये जाते। कारख़ाने में माहौल ऐसा बना दिया जाता है कि मशीनों में बहुत सी गड़बड़ियों को ठीक करने का मतलब समय और पैसा खराब करना होगा। मज़दूरों की शिकायतों को कामचोरी मान लिया जाता है।

मुनाफ़े की हवस में पूँजीपति एक पैसा भी हादसों से सुरक्षा के इंतजामों पर खर्च नहीं करना चाहते। इस व्यवस्था में पूँजीपतियों के लिए मज़दूर सिर्फ मशीन के पुर्जे बन कर रह गये हैं।

— विशाल, लुधियाना

अस्पताल या कसाईखाना

जयभगवान ग़ाज़ियाबाद के पास एक छोटे से कस्बे गढ़ के रहने वाले हैं। पिछले कई सालों से नोएडा में एक हलवाई की दुकान पर मेहनत-मज़दूरी का काम कर रहे हैं। उनके पास रहने का कोई निश्चित ठौर-ठिकाना नहीं है। कभी कहीं झुग्गी डाल लेते हैं, तो कभी किराये के कमरे में भी रह लेते हैं। पिछले महीने उनकी तबयित अचानक बिगड़ गयी। उन्हें पेट में दर्द की शिकायत हुई तो अपने मोहल्ले के एक डॉक्टर टी.के. बाला (झोलाछाप) की क्लीनिक पर गये। उसने उन्हें ग़ाजियाबाद के एक दूसरे अस्पताल जीवन ज्योति में इलाज करवाने के लिए भेज दिया। जीवन ज्योति में पहुँचकर डॉक्टर ने सोनोग्राफी करवाने के लिए कहा और रिपोर्ट आने पर बताया कि हालत बहुत गम्भीर है और तुरन्त ऑपरेशन करना पड़ेगा। जयभगवान को बताया गया कि उसकी आँत फट गयी है। भर्ती होते वक्त जयभगवान ने 15000 रुपये जमा करवाये थे। ऑपरेशन के बाद बताया गया कि कुल बिल 80,000 रुपये का बना है। उनके परिवार के लोगों ने बताया कि उनके पास जितना भी पैसा था वे पहले ही जमा करा चुके थे और अब उनके पास कुछ नहीं है। अस्पताल के डॉक्टरों ने उन्हें बिना भुगतान किये डिस्चार्ज करने से मना कर दिया। जयभगवान ने जब अपने दुकान मालिक से मदद माँगी तो उसने भी हाथ खड़े कर दिये लेकिन काफ़ी आरज़ू-मिन्नत करने के बाद 8000 रुपये सूद पर उधार दिया। बाकी रक़म भी परिवार वालों ने तगड़े ब्याज पर इकट्ठा की और अस्पताल का बिल चुकाया। अस्पताल के एक कर्मचारी ने बताया कि जगह-जगह से झोलाछाप डॉक्टर उनके यहाँ 25 प्रतिशत कमीशन पर मरीज़ों को भेजते रहते हैं। जयभगवान को भी ऐसे ही एक डॉक्टर ने उनके यहाँ भेजा था। उस कर्मचारी ने यह भी बताया कि जयभगवान 5 मई को भर्ती हुए थे और 28 मई तक जाकर अपने बिल का भुगतान कर पाये थे लेकिन उन्हें अस्पताल भेजने वाले डॉक्टर बाला को उसके कमीशन के 20,000 रुपये ऑपरेशन के 4 दिन बाद ही पहुँचा दिये गये थे।

– एक मज़दूर, गाज़ियाबाद

फासीवाद क्या है और उससे कैसे लड़ें?

अभिनव सिन्हा

नयी महत्वपूर्ण सामग्री के साथ संवर्द्धित संस्करण

पृष्ठ : 204, मूल्य : 75 रुपये

प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें:

जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ-226020

फोन: 8853093555, ईमेल: **info@janchetnabooks.org**

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **- लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल के लिए अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव आप इन तरीक़ों से भेज सकते हैं:

डाक से भेजने का पता: **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता: **bigulakhbar@gmail.com**

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं:
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब नहीं मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीआर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरणः Mazdoor Bigul
खाता संख्याः 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200
पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यताः वार्षिक: 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:
फ़ोनः 0522-2786782, 8853093555, 9936650658
ईमेलः bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - रु. 5/- वार्षिक - रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता - रु. 2000/-

मज़दूरों के लिए गुजरात मॉडल की असलियत

मेरा नाम राजेश है। मेरी उम्र 36 वर्ष है। मैं हरियाणा के जिला कैथल के एक कस्बे कलायत का रहने वाला हूँ। मैं एक ग़रीब दलित मज़दूर परिवार से ताल्लुक रखता हूँ। मेरे पिताजी लकड़ी काटने का काम करते थे। ग़रीबी के चलते मेरी पढ़ाई भी ज़्यादा नहीं हो पायी यानि मुझे केवल अक्षर ज्ञान तक की ही जानकारी है। मैं अपने पिताजी के साथ काम पर जाता था परन्तु लकड़ी काटने की नयी-नयी मशीनें आने के कारण लकड़ी काटने और चीरने का काम काफ़ी सीमित हो गया। दिहाड़ीदारों के लिए अब काम नाममात्र ही रह गया है और वह भी ठेकेदारों के हाथों में ही सिमटा है। काम कभी मिलने कभी न मिलने के कारण घर का खर्च भी नहीं चल पाता था। बेरोज़गारी, ग़रीबी और महँगाई के चलते मैं परेशान रहने लगा। इनसे दुःखी होकर मैंने नशों का सहारा लेना शुरू कर दिया और शराब भी पीने लगा। मेरी गृहस्ती बिगड़ गयी, दिक्कतें बढ़ती गयी और घर पर हर समय टेंशन रहने लगा। इसी बीच एक आदमी ने मुझे गुजरात में काम दिलवाने की बात कही।

गुजरात में मुझे 10,000 रुपये महीना तनख्वाह, घर आने-जाने का खर्च, खाने-पीने और रहने की व्यवस्था मिलना तय हुआ। मुझसे कहा गया कि तुम्हारी तनख्वाह पूरी की पूरी तो बच ही जायेगी! मैं बेरोज़गारी, नशों और घर-बाहर के तानों से परेशान हो चुका था। मैं अपने अन्दर सुधार लाना चाहता था क्योंकि बड़ी दिक्कतों के बाद मेरी पत्नी मेरी लड़कियों के साथ वापस घर आयी थी जोकि पहले झगड़ों के कारण मायके चली गयी थी।

दलाल की बातों का भरोसा करके हम पाँच लोग हरियाणा से मज़दूरी करने के मक़सद से गुजरात की ओर उस आदमी के साथ चल दिये। यह बात जनवरी 2016 की है। हम हिम्मतनगर की एक जगह श्यामनगर पहुँचे। वहाँ पर हमें एक आलू स्टोर में काम करना था। उस आलू स्टोर का ठेकेदार हरियाणा से ही था। अगले दिन सुबह पाँच बजे हमें जगा दिया गया और 20-25 मिनट के अन्दर तैयार होने के लिए कहा गया और उसके बाद हम सब काम पर थे। पहले दिन तो मुझे कुछ समझ ही नहीं आया कि यहाँ हो क्या रहा है, काम पर लगने के बाद घण्टे-दर-घण्टे गुजरते रहे, काम रुकने का नाम ही नहीं ले रहा था। हमें आलू की बोरियों को गाड़ियों से उतारकर क़रीब 20 फ़ीट गहरे 'अण्डरग्राउण्ड' स्टोर में लगाते जाना था, गोदाम की कभी किसी मंजिल तो कभी किसी मंजिल तक आलू की बोरियों को पहुँचाना था। गाड़ियों में लदान और उतरान का काम भी करना पड़ा। पहले भी मैंने कठोर मेहनत के काम किये थे किन्तु इस तरह से काम करने का यह पहला मौका था जब लगातार बिना रुके काम करना, न समय पर खाना और न समय पर पीना, सुस्ताने और पानी तक पीने पर भी ठेकेदार और उसके गुर्गों की गन्दी गालियाँ सुनना। पहले दिन हमें काम करते-करते रात के 11 बज गये क्योंकि नयी गाड़ियाँ आती रही उन्हें लादने और खाली करने का काम लगातार होता रहा।

पहले दिन मैंने सोचा कि आज काम ज़्यादा होगा इसलिए ऐसा हुआ होगा। उस रात पूरे शरीर में दर्द हो रहा था इसलिए ढंग से नींद भी नहीं आ पायी। सुबह पाँच बजे फिर उठने के लिए आवाजें आनी शुरू हो गयी कि पाँच बज गये और 20 मिनट के अन्दर तैयार हो जाओ, साथ-साथ गन्दी से गन्दी गालियाँ भी सुनायी जा रही थी। रोज़ ऐसा ही चलता रहा। सुबह पाँच बजे से लेकर हमसे रात के 11-12 बजे तक जी तोड़ मेहनत के साथ काम लिया जाता, बैल और गधे को तो आराम भी नसीब हो जाता है और गालियों को वे समझ नहीं सकते पर हमारे लिए तो यह भी नहीं था। सुबह आठ बजे चाय, एक से डेढ़ बजे के बीच में खाना और फ़िर रात को काम ख़त्म होने के बाद खाना। सब्जी के नाम पर सिर्फ आलू। वहाँ लदाई, उतराई और ड्राइवरों को मिलाकर कुल 150 मज़दूर थे। हम स्टोर में काम करने वाले कुल 35 व्यक्ति थे जिनमें छह बिहार से थे और बाकि सब हरियाणा से थे। मैं एक खाते-पीते इलाक़े से आया था, काम के दौरान मुझे इतनी दिक्कतें कभी नहीं हुई थीं और मैंने कभी फैक्ट्री में ठेकेदारों के तले भी काम नहीं किया बस भाई-बन्धुओं से सुना भर था। अब मुझे मालिक-ठेकेदार की 'नस्ल' का अहसास हुआ। यहाँ पर हर आदमी अपनी क्षमता की सीमाओं टूटने तक काम करने के लिए मजबूर था लेकिन ठेकेदार फिर भी गन्दी गालियाँ देने से बाज़ नहीं आता था। कम उम्र हो या फिर उम्रदराज सभी को वह गालियाँ देता रहता था। मैंने उससे कहा भी कि आप हमारे हरियाणा से ही तो हो फिर हमारे साथ अच्छा व्यवहार क्यों नहीं करते? मगर ऐसा करके मैंने अपनी फ़ज़ीहत कराने का ही काम किया।

हमसे रोज़ 18 से 19 घण्टे काम करवाया जा रहा था, जब हम टॉयलेट जाते तो भी ठेकेदार या उसके गुर्गे साथ-साथ जाते और जल्दी करो-जल्दी करो की रट्ट लगाये रहते। हम गुलामों सी ज़िन्दगी जी रहे थे, कोई भी आदमी गोदाम से बाहर नहीं जा सकता था, आपस में काम के दौरान बात नहीं कर सकता था और ज़रा सी कमर सीधी करते ही गालियों की बौछार होने लगती थी। जब मैं छोटा था तो मैंने दलित मज़दूरों को खेतों में बन्धुआ मज़दूर जैसे हालातों में काम करते और बेगारी खटते देखा था लेकिन यहाँ पर हमारी स्थिति तो उनसे कहीं बदतर ही जान पड़ती थी। इतना काम करने पर शरीर का एक-एक अंग टूट जाता था इसलिए हमें हर रोज़ दर्द के लिए 3-4 पेनकिलर गोलियाँ खानी पड़ती थीं। 'डेक्लोफेनिक सोडियम' नाम की यह दवा बाज़ार में 5 रुपये के तीन पत्ते आसानी से मिल जाती है पर यहाँ ठेकेदार अपने स्टोर से हमें बीस रुपये का एक पत्ता देता था। सभी मज़दूर सुबह उठते ही दर्द की दवा खाने को मजबूर थे नहीं तो शरीर को हिला भी नहीं सकते थे। हम एक-दूसरे की मदद भी बस इस तरह से कर सकते थे कि दो शब्द सांत्वना के बोलकर जेब से पेन किलर उसे देकर बोल देते थे कि जल्दी काम पर लग जा वरना ठेकेदार देख लेगा। वहाँ मज़दूरों की जेब में पैसा, बीड़ी, मोबाइल हो न हो लेकिन दर्द की दवा ज़रूर मिलेगी। वहाँ इंसानों को इंसान नहीं बल्कि गुलाम समझा जाता था, काम करने वाले गुलाम। पहले दिन की बनी थकावट आज भी शरीर महसूस सकता है। वहाँ पर मैं करीब एक महीना रहा पर वह एक महीना मेरे लिए कई बरसों के समान है। वहाँ पर समय जैसे ठहर सा गया था। लगातार 18 से 19 घण्टे काम करने और अच्छा खाना न मिलने के कारण मैं बीमार पड़ गया पर ठेकेदार मुझसे अब भी काम करवाता रहा, बेबस होने के बाद भी वह मुझे गालियाँ देता रहता था। एक पुराने मज़दूर ने जब कहा कि ऐसे तो यह मर ही जायेगा तब कहीं जाकर बड़ी मुश्किल से ठेकेदार काम से छुट्टी देने को तैयार हुआ। अब मेरी हालत यह थी कि मैं ठीक से चल भी नहीं पाता था। मुझे पास के ही एक डॉक्टर से दवा दिलाकर कमरे पर लाया गया जहाँ पहले से ही दो अन्य मज़दूर लेटे हुए थे। मैं टॉयलेट तक भी रेंगकर और लड़खड़ाते हुए बड़ी मुश्किल से जा पा रहा था फिर भी मुझे घर नहीं जाने दिया गया। दो दिन बाद ठेकेदार कमरे पर आकर गालियाँ देने लगा और मुझे रसोई में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ा। चार-पाँच दिन बाद जालिम ठेकेदार से मिन्नतें करके मैं उससे पीछा छुड़ा पाया हूँ। मोदी का गुजरात मॉडल मेरे पर बहुत भारी पड़ा है।

कलायत में बिगुल मज़दूर दस्ता के साथी अपने अभियानों में यह बात रखते थे कि देश में मज़दूरों के हालात बहुत बुरे हैं। गुजरात में काम करने के दौरान मुझे एक-एक बात याद आ रही थी। मज़दूरी तो मैं पहले भी करता था पर गुजरात में हालात बेहद नारकीय थे। मैं जैसे-तैसे घर तो पहुँच गया हूँ पर अब भी ढंग से चल नहीं पा रहा हूँ। मेरी कमाई के ज़्यादातर पैसे तो दवाओं पर ही ख़र्च हो गये और अब भी इलाज चल ही रहा है। इस समाज में मनुष्य का जहाँ मनुष्य के द्वारा ही इतना भयंकर शोषण हो रहा हो ऐसा समाज रहने के लायक कैसे हो सकता है? इस शोषण पर आधारित समाज का ख़ात्मा बेहद ज़रूरी है।

– राजेश, असंगठित स्वतंत्र मज़दूर, कलायत, कैथल, हरियाणा

एक और मज़दूर दुर्घटना का शिकार, मुनाफ़े की हवस ने ली एक और मज़दूर की जान!

पिछली 29 मई को मानेसर की ब्रिजस्टोन कम्पनी में ठेके पर काम कर रहा 35 वर्षीय मज़दूर राधेशाम दुर्घटना का शिकार हो गया था और 6 जून को उसने अपने जीवन के लिए संघर्ष करते हुए आखिरी साँस ली। ऑटोमोबाइल सेक्टर में ऐसी दुर्घटनाएँ कोई नयी बात नहीं है। आये दिन किसी न किसी फैक्ट्री में कम्पनी मैनेजमेंट की आपराधिक लापरवाही की वजह से दुर्घटनाओं में मज़दूर अपनी जान गँवा बैठते हैं या बुरी तरह घायल हो जाते हैं। लाखों मज़दूर अपनी जान जोख़िम में डालकर काम करने के लिए मजबूर हैं।

राधेश्याम बिहार का रहने वाला था और पिछले 7 महीनों से बहुराष्ट्रीय टायर कम्पनी ब्रिजस्टोन में ठेके पर काम कर रहा था। पिछले साल सितम्बर में चली हड़ताल के बाद कम्पनी प्रशासन ने पुराने सब मज़दूरों को काम से निकाल ठेके पर नयी भर्ती की थी। लेकिन कम्पनी में काम करने के तरीके और सुरक्षा नियमों की अवहेलना में कोई तब्दीली नहीं आयी। 29 मई को जब राधेश्याम मेंटेनेंस पर काम कर रहा था तब अचानक पावर सप्लाई ऑन हो जाने के कारण उसे बिजली का जानलेवा झटका लगा। यह दुर्घटना कम्पनी प्रशासन की लापरवाही और धूर्तता को एक दम नंगा कर देती है। दुर्घटना के बाद इस मामले को दबाने के लिए आनन-फानन में राधेश्याम को मानेसर के रॉकलैंड अस्पताल में भर्ती करवा दिया गया जहाँ वह कोमा में बेसुध पड़ा रहा। न तो कम्पनी ने उसके परिवार वालों को सूचित किया और न ही उसके इलाज के लिए कोई ठोस कदम उठाया। यह सच्चाई अब सभी जानते हैं कि श्रम क़ानूनों की खुली अवहेलना करते हुए मज़दूरों को ईएसआई कार्ड नहीं दिये जाते हैं लेकिन जब वह काम करते हुए ऐसी दुर्घटनाओं का शिकार हो जाते है तब कम्पनियाँ मज़दूरों की आँखों में धूल झोंकने और अपनी ज़िम्मेदारी से बचने के लिए ईएसआई कार्ड बनवाने की नौटंकी करने लगती हैं। राधेश्याम की हालत दिन-ब-दिन नाज़ुक होती गयी, जब उसके घरवालों को इस हादसे के बारे में पता चला तो वह उसकी ख़बर लेने पहुँचे मगर कम्पनी या ठेकेदार ने उनकी कोई मदद नहीं की। 6 जून को राधेश्याम की मृत्यु के बाद ठेकेदार ने गुंडों से उसके परिवार वालों को डरा-धमका कर उसके शरीर को जबरन दफ़ना दिया। आर्थिक रूप से कमज़ोर पृष्ठभूमि से आने वाले उसके परिवार वालों को डराया-धमकाया गया कि इस मामले में कोई भी कदम उठाया तो अच्छा नहीं होगा। अभी तक पुलिस ने इस मामले में कोई कार्रवाई नहीं की है उल्टा कम्पनी बाकी ठेका मज़दूरों को काम से निकाल देने की धमकी देकर इस मामले को रफ़ा-दफ़ा करना चाहती है।

इस घटना से दो चीज़ें साफ़ हैं – पहली यह कि यह कोई दुर्घटना नहीं बल्कि पूँजीवादी राक्षस के हाथों राधेश्याम की हत्या है, और दूसरी यह कि चमचमाती गाड़ियों को बनाने वाले इन मज़दूरों की ज़िन्दगी में कितना अँधेरा है। इनकी ज़िन्दगी की क़ीमत बस चन्द हज़ार रुपये है। बड़ी-बड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें ऐसी घटनाओं पर मौन धारण किये बैठी रहती हैं। न तो इनके नेता ठेका मज़दूरों पर फैक्टरियों में हो रहे शोषण के खिलाफ़ आवाज़ उठाते हैं और न ही ऐसी गम्भीर घटनाओं के के बाद मज़दूरों को एकजुट करते हैं। सालाना अनुष्ठान की तरह एकदिवसीय हड़ताल का नाटक करने वाले ये लोग क्यों किसी मज़दूर की ऐसी निर्मम हत्या के बाद पूरे ऑटोसेक्टर का चक्का जाम कर नहीं देते? बात सिर्फ नीयत की है, जिनको अपनी दूकान चलानी है वे रस्मी कवायदों में मशगूल रहेंगे। इसके लिए उन्हें ही सोचना होगा जो रोज़ अपनी ज़िन्दगी दाँव पर लगाकर कारख़ानों के चक्के चलाते हैं।

ग्रेटर नोएडा की यामाहा फैक्ट्री में वेतन बढ़ोत्तरी की माँग पर हड़ताल कर रहे मज़दूरों पर पुलिस और अर्द्धसैनिक बल ने बरसाई लाठियाँ!

ग्रेटर नोएडा के सूरजपुर स्थित यामाहा फैक्ट्री के करीब 3000 कॉन्ट्रैक्ट मज़दूर वेतन बढ़ोतरी की माँग को लेकर 9 जून को अचानक हड़ताल पर चले गये। कम्पनी ने वार्षिक वेतन बढ़ोत्तरी के बाद स्थायी कामगारों के वेतन में तो 16,000 की वृद्धि की लेकिन कान्ट्रैक्ट पर काम करने वाले मज़दूरों का मखौल उड़ाते हुए मैनेजमेंट ने वेतन में मात्र 20 रुपए की बढ़ोत्तरी की जिसमें से 6 रुपए कैंटीन शुल्क के रूप में काट लिये जायेंगे! उनकी कोई भी सुनवाई करने के बजाय अगले दिन मैनेजमेंट ने पुलिस और अर्द्धसैनिक बल से फैक्ट्री के बाहर बैठे मज़दूरों पर बुरी तरह लाठीचार्ज करवा दिया।

कम्पनी के नियमित मज़दूरों और कान्ट्रैक्ट मज़दूरों के न तो काम में कोई अन्तर है और न ही काम के घंटों में कोई फर्क है, फिर भी एक ही फैक्ट्री में काम करने वाले मज़दूरों के वेतन में ज़मीन-आसमान का फर्क कोई इत्तेफ़ाक नहीं है। पूँजीवाद में मज़दूरों की वर्ग एकता को तोड़ने के लिए पूँजीपति बहुत चालाकी से मज़दूरों के बीच भी एक सफ़ेद कालर मज़दूर वर्ग तैयार कर देता है जो अपने ही वर्ग हित के ख़िलाफ़ काम करते हैं। स्थायी मज़दूरों की नुमाइन्दगी करने वाली ट्रेड यूनियनें भी ठेका मज़दूरों पर हो रहे इस शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की ज़हमत नहीं उठातीं। उनके लिए ठेका मज़दूर सिर्फ उनके वार्षिक सम्मेलनों और रैलियों की भीड़ बढ़ाने के काम आते हैं। ख़ुद को मज़दूर वर्ग का अगुआ बताने वाली इन तमाम केन्द्रीय मज़दूर यूनियनों ने कभी भी ठेका मज़दूरों के संघर्ष में उनका साथ नहीं दिया। पिछले कई वर्षों के दौरान मारुति के मज़दूरों के आन्दोलन में भी इनका यह रवैया उजागर हो चुका है। देशभर में हर जगह ऐसा ही है।

आज जब यामाहा के ठेका मज़दूरों के अधिकारों का हनन हो रहा है तब भी एच.एम.एस. से सम्बद्ध स्थायी मज़दूरों की यूनियन चुप्पी साधे बैठे है। ऐसी घटनाएँ बार-बार यही साबित करती हैं कि ऑटोमोबाईल सेक्टर के ठेका मज़दूरों की सेक्टरगत यूनियन ही मज़दूरों की माँगों को लेकर जुझारू और असरदार ढंग से लड़ सकती है।

– बिगुल संवाददाता

कारख़ानों में सुरक्षा के पुख्ता प्रबंधों के लिए मज़दूरों का डी.सी. कार्यालय पर ज़ोरदार प्रदर्शन

13 मई, 2016 को बिगुल मज़दूर दस्ता, टेक्सटाईल-हौज़री कामगार यूनियन, कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में लुधियाना के औद्योगिक मज़दूरों ने डी.सी. कार्यालय, लुधियाना पर ज़ोरदार प्रदर्शन किया। मेहरबान, लुधियाना की ज्ञानचंद डाइंग (गुलशन हौज़री) में 6 मई लगी भयानक आग के तीन मज़दूरों की मौत के कसूरवार कारख़ाना मालिक पर धारा 304 आई.पी.सी. के तहत केस दर्ज करके जेल में भेजने, मामले को रफा-दफा करने की साजिश में शामिल दोषी पुलिस अफसरों को बर्खास्त करने, कसूरवार श्रम विभाग के अफसरों पर सख़्त कार्रवाई करने, सभी कारख़ानों में हादसे रोकने के लिए सुरक्षा के पुख्ता प्रबन्धों के लिए ज़ोरदार आवाज उठाई गयी। मज़दूरों ने कारख़ानों में पहचान पत्र, ई.एस.आई., पक्के हाजिरी कार्ड/रजिस्टर आदि सहित तमाम श्रम क़ानून लागू करने, सुरक्षा के इंतजामों की अनदेखी करने वाले कारख़ाना मालिकों पर सख़्त कार्रवाई करने, पीड़ित परिवारों को पर्याप्त मुआवजा देने की माँगें भी उठाई। डी.सी. लुधियाना के कार्यालय पर हाजरि ने होने के कारण ए.डी.सी. ने माँग पत्र लिया। मज़दूरों के दबाव के चलते ए.डी.सी. को बाहर आकर माँग पत्र लेना पड़ा। ए.डी.सी. ने मकादूरों को दोषियों पर किसी भी प्रकार की कार्रवाई करने का कोई भरोसा नहीं दिया। ए.डी.सी. का यह रवैया लुधियाना प्रशासन के मज़दूर विरोधी रवैये की एक बड़ी उदाहरण है।

06 मई की रात 2 बजे बंटी झा, सतीश राऊत व भोला नाम के तीन मज़दूरों की उपरोक्त कारख़ानें में भड़की आग में झुलसने से मौत हो गयी थी। कारख़ाने के जिस कमरे में वे काम कर रहे थे वहाँ से बाहर निकलने का केवल एक ही रास्ता था जहाँ भयंकर आग लगी थी। आपातकालीन स्थिति के लिए कोई रास्ता था ही नहीं। आग लगने से रोकने व बुझाने की कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी।

वक्ताओं ने कहा कि लुधियाना ही नहीं बल्कि देश के सभी कारख़ानों में रोजाना भयानक हादसे होते हैं जिनमें मज़दूरों की मौते होती हैं और वे अपाहिज होते हैं। मालिकों को सिर्फ अपने मुनाफ़े की चिन्ता है। मज़दूर तो उनके के लिए सिर्फ मशीनों के पुर्जे बनकर रह गये हैं। सारे देश में पूँजीपति सुरक्षा सम्बन्धी नियम-क़ानूनों सहित तमाम श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ा रहे हैं। पूँजीपतियों, सरकार, श्रम विभाग, पुलीस-प्रशासन, गुण्डों का नापाक गठबन्धन मज़दूरों के हकों को कुचल रहा है। उन्होंने कहा कि मज़दूरों को इस लूट-खसोट, बेइंसाफी के ख़िलाफ़ ज़ोरदार एकजुटता क़ायम करनी होगी। वक्ताओं ने कहा कि जबसे केन्द्र में मोदी सरकार बनी है तब से मज़दूरों की हालत और भी बदतर हो गयी है। मोदी सरकार इससे पहली सरकारों से भी अधिक तेज़ी व सख़्ती से मज़दूरों के अधिकारों को कुचल रही है। मज़दूरों को श्रम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ाने की पूरी छूट मिल चुकी है जिसके कारण औद्योगिक हादसों में काफी वृद्धि हो रही है।

कारख़ाना मज़दूर यूनियन की ओर से लखविन्दर, टेक्सटाईल हौज़री कामगार यूनियन की तरफ से घनश्याम, बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से विश्वनाथ, नौजवान भारत सभा की बलजीत के अलावा मोल्डर एण्ड स्टील वर्कर्ज यूनियन के नेता हरजिन्दर सिंह व विजय नारायल, लोक मोर्चा पंजाब के नेता कस्तूरी लाल, इंकलाबी केन्द्र पंजाब के नेता जसवंत जीरख आदि ने सम्बोधित किया।

– बिगुल संवाददाता

मोदी सरकार की नयी काली करतूत

कारख़ानों में श्रम क़ानूनों के हर उल्लंघन पर मालिक के विरुद्ध जाँच के लिए अब दिल्ली से इजाज़त लेनी होगी – यानी जाँच होगी ही नहीं!

मोदी सरकार का आम जनता के जनवादी अधिकारों पर हमला लगातार जारी है। मज़दूरों को इस हमले की मार सबसे अधिक झेलनी पड़ रही है। मज़दूरों के क़ानूनी श्रम अधिकारों को लगातार खत्म किया जा रहा है। पहले ही भयानक परेशानियों का शिकार मज़दूरों की हालत और भी बुरी हो गयी है। ई.एस.आई. की सहूलत के तहत मज़दूरों के एक हिस्से को दवा-इलाज की सहूलत मिलती रही है। लेकिन मोदी सरकार प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष ढंग से इस अधिकार को भी छीनने की कोशिश कर रही है। इसकी एक उदाहरण पिछले दिनों देखने में आई है।

ई.एस.आई. सहित अन्य अधिकारों के लिए 14 अप्रैल से जारी हड़ताल के दौरान राजकुमार रविन्दरकुमार टेक्सटाइल, लुधियाना के हड़ताली मज़दूर जब ई.एस.आई.सी. के उप-क्षेत्रीय कार्यालय (लुधियाना) पर ई.एस.आई. सहूलत लागू न करने की मालिक के ख़िलाफ़ शिकायत लेकर गये तो पता चला कि लगभग डेढ महीना पहले मोदी सरकार ने विभाग को आदेश जारी किये हैं कि अगर उप-क्षेत्रीय कार्यालयों पर किसी मालिक के ख़िलाफ़ शिकायत आती है तो मालिक के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने की आज्ञा दिल्ली स्थित मुक्यालय से लेनी होगी। टेक्सटाइल हौजरी कामगार यूनियन उस दिन एक अन्य मज़दूर द्वारा मालिक की शिकायत भी लेकर गयी थी जो मज़दूर के इएसआई के लिए पैसे तो काटता था लेकिन आगे जमा नहीं करवाता था जिसके चलते उसका कार्ड बन्द हो गया है। वह ईएसआई अस्पताल से इलाज नहीं करवा पा रहा है। इस बारे में शिकायत करने पर ज्वांइण्ट डायरेक्टर ने बताया के इस मामले में भी मालिक के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने के लिए दिल्ली से आज्ञा लेनी पड़ेगी।

मोदी सरकार चोरी-छिपे मज़दूर अधिकारों पर किस स्तर के हमले कर रही है यह इसकी एक उदाहरण है। मज़दूरों को मोदी सरकार के इन मज़दूर विरोधी कदमों का ज़ोरदार विरोध करना होगा।

– बिगुल संवाददाता

टेक्सटाइल-होज़री मज़दूरों की हड़तालों ने अड़ियल मालिकों को झुकने के लिए मजबूर किया

मई महीने में लुधियाना में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन के नेतृत्व में दो कारख़ानों के मज़दूरों ने मालिकों लूट-शोषण के ख़िलाफ़ ज़ोरदार हड़तालों के जरिए अहम प्राप्तियाँ हासिल की हैं।

पहली हड़ताल लुधियाना के इण्डस्ट्रीयल एरिया-ए स्थित राजकुमार रविन्दर कुमार टेक्सटाइल में हुई। 18 अप्रैल को मोहित नाम के एक मज़दूर को मालिक ने एक भारी डिजाइन चेन जैकाट पावरलूम मशीन पर चढ़ाने के लिए कहा था। यह काम दो मज़दूरों का था लेकिन मोहित को अकेले ही यह काम काम करने के कहा गया। ऐसा करते हुए मोहित सीढ़ी से गिर गया और उसके पैर की हड्डी टूट गयी। जब मालिक ने उसका सही ढंग से इलाज नहीं करवाया गया तो बाकी मज़दूरों ने मालिक पर दबाव बनाया कि उसका सही ढंग से इलाज करवाए। साथ ही माँग की कि सभी मज़दूरों का ई.एस.आई. कार्ड बनाया जाये। मालिक ने साफ कह दिया कि मोहित 500 रुपए ले ले और गाँव जाकर अपना इलाज करवा ले। ई.एस.आई. बनाने से भी उसने दो टूक इनकार कर दिया। मालिक के अमानवीय रवैये ने कारख़ाने के सारे मज़दूरों (32) को 14 मई 2016 से हड़ताल पर जाने के लिए मजबूर कर दिया।

मालिक को भ्रम था कि मज़दूर एक-दो दिन में काम पर वापिस आ जाएँगे। लेकिन मज़दूरों ने भी लम्बी लड़ाई लड़ने की ठान ली थी। इलाक़े में अन्य मज़दूरों से समर्थन हासिल करने के लिए ज़ोरदार प्रचार चलाया गया। पर्चा बाँटा गया, नुक्कड़ सभाएँ की गईं, पैदल मार्च किये गए। अन्य पावरलूम मज़दूरों से अपील की गयी कि उनकी जगह दूसरे मज़दूर काम पर न जाएँ। ई.एस.आई.सी. व श्रम विभाग के कार्यालयों पर ज़ोरदार प्रदर्शन करके मालिक के ख़िलाफ़ शिकायत की गयी। मालिक ने हड़ताली मज़दूरों को लालच और डराने-धमकाने के जरिए तोड़ने की बहुत कोशिश की। लेकिन मज़दूर हड़ताल में डटे रहे। हड़ताल के सातवें दिन 20 मई को श्रम विभाग कार्यालय पर मज़दूरों और मालिकों के बीच टेक्सटाईल हौज़री कामगार यूनियन के प्रतिनिधियों, लुधियाना टेक्सटाइल ऐसोसिएशन के प्रतिनिधियों व सहायक श्रम कमिश्नर व श्रम इंस्पेक्टर की हाजिरी में लिखित समझौता हुआ। मालिक मोहित को 25 हज़ार रुपए मुआवजा देने, कारख़ाने में सुरक्षा के इंतजाम, सभी मज़दूरों को ई.एस.आई., ई.पी.एफ., हाजिरी, पीने के पानी की उचित प्रबन्ध, साफ-सफाई, छुट्टियाँ आदि आधिकार देने के लिए लिखित समझौता करने के लिए मजबूर हुआ। रिपोर्ट लिखे जाने तक मुआवजा मिल चुका है, ई.एस.आई. व ई.पी.एफ. की सहूलत लागू करने की प्रक्रिया काफी हद तक पूरी हो चुकी है। स्वच्छ पेयजल और साफ-सफाई की व्यवस्था भी की गयी है। इस तरह इस कारख़ाने के मज़दूरों ने एकजुटता के जरिए मालिक, ई.एस.आई. व श्रम विभाग को उनके अधिकार देने के लिए मजबूर किया।

दूसरी हड़ताल रेडीमेड कपड़ों की प्रसिद्ध कम्पनी 'ओक्टेव क्लाथिंग' के कारख़ाने में हुई। जालंधर बाईपास के नजदीक जी.टी. रोड पर स्थित कारख़ाने का मालिक हर्ष कुमार मज़दूरों से रोज़ाना गाली-गालौज व मारपीट करता था। जब कोई मज़दूर विरोध करता तो पिस्तोल तान कर जान से मारने की धमकी देता था। मज़दूर बताते हैं कि उसने मज़दूरों को डराने के लिए कारख़ाने में कई बार हवाई फायर भी किये हैं। 25 मई को भी उसने जाहिद अंसारी नाम के एक मज़दूर के साथ गाली-गालौज व धक्कामुक्की की। जब जाहिद ने विरोध किया तो मालिक ने अपने अंगरक्षक को कहा कि जाहिद गोली मार दे। जब अंगरक्षक ने ज़ाहिद पर पिस्तोल तानी तो सारे मज़दूर तुरन्त खड़े होकर इसका विरोध करने लगे। लगभग 200 मज़दूरों ने तुरन्त हड़ताल का ऐलान कर दिया। थाने में शिकायत दी गयी लेकिन पुलीस कार्रवाई करने को तैयार नहीं थी। मालिक ने बहाना बनाया कि आत्मरक्षा के लिए पिस्तोल निकाली गयी थी। अधिकतर मज़दूर चाहते थे कि मालिक अगर माफ़ी माँग लेता है और सरकारी अधिकारियों के सामने लिखित में भरोसा देता है कि भविष्य में फिर कभी इस तरह की कार्रवाई नहीं करेगा तो वे काम पर लौटने को तैयार हैं।

हड़ताल पर गये सारे मज़दूर वे थे जिन्हें कोई भी क़ानूनी श्रम अधिकार प्राप्त नहीं है। उनके पास कारख़ाने में काम करने का कोई सबूत तक नहीं था। उन्हें तो पता तक नहीं था कि श्रम क़ानून जैसी कोई चीज भी होती है। यूनियन द्वारा की गयी बातचीत से मज़दूरों ने इस बात को समझा कि उन्हें कारख़ाने में पहचान पत्र, ई.एस.आई., ई.पी.एफ., आदि अधिकार लागू करवाने की लड़ाई भी जरूरी तौर पर लड़नी चाहिए। इसके बारे में श्रम विभाग में शिकायत दी गयी।

ओक्टेव क्लाथिंग कारख़ाने के मालिक ने भी मज़दूरों को लालच देकर व डरा-धमकाकर हड़ताल तोड़ने की कोशिश की। उसने एक शो रूम के उदघाटन के लिए दुबई चले जाने का ड्रामा रचा तांकि मज़दूरों को हड़ताल खत्म होती नज़र न आये और हिम्मत हार कर काम पर लौट आएँ। उसने अपनी पत्नी, कैशीयर, आदि के जरिए लिखित समझौता करवाने की कोशिश की। कांग्रेस, अकाली दल आदि पार्टियों से जुड़े दलाल नेताओं के जरिए हड़ताल तुड़वाने की कोशिश हुई। मज़दूरों में से ही मालिकों के दो-तीन चमचों ने हड़ताल तुड़वाने के लिए पूरा ज़ोर लगाया। यूनियन नेताओं को खरीदने की भी कोशिश की गयी। लेकिन एक भी चाल कामयाब नहीं हुई। मज़दूर इस बात पर अड़े रहे कि जब कि मालिक हर्ष कुमार ख़ुद हाज़िर होकर श्रम विभाग के अधिकारियों के सामने लिखित समझौता नहीं करता तब तक वे हड़ताल खत्म नहीं करेंगे। मज़दूरों ने कारख़ाना गेट, पुलिस थाने, श्रम विभाग कार्यालय पर ज़ोरदार प्रदर्शन किये। इलाक़े में पर्चा भी बाँटा। इलाक़े के मज़दूरों से समर्थन व उनकी जगह काम पर न जाने की अपील की। आखिर उसे भी हड़ताल के सातवें दिन 31 मई को झुकना पड़ा। मालिक हर्ष कुमार ने सहायक श्रम कमिश्नर, श्रम इंस्पेक्टर, यूनियन प्रतिनिथियों आदि की हाज़िरी में कारख़ाने के मज़दूरों के धरना स्थान अम्बेडकर पार्क में लिखित समझौता किया कि वह कारख़ाने में भविष्य में किसी भी मज़दूर के साथ दुर्व्यवहार, गाली-गालौज, मार-पीट आदि न होने की गारण्टी लेता है। उसने लिखित में ई.एस.आई., ई.पी.एफ., पहचान पत्र, छुट्टियाँ, आदि श्रम अधिकार लागू करने की माँगें भी मान लीं। इस तरह ओक्टेव क्लाथिंग के मज़दूरों ने भी ज़ोरदार हड़ताल के जरिए अहम जीत हासिल की। इस कारख़ाने के संघर्ष की एक बड़ी कमी यह थी कि हड़ताल पर गये सारे मज़दूर मीटिंग व धरना-प्रदर्शन में शामिल नहीं होते थे। मीटिंग आदि में शामिल होने वाले मज़दूरों की संख्या 80 से 150 के बीच में रही। अगर हड़ताल पर गये सभी मज़दूरों की मीटिंगों आदि में लगातार मीटिंगों, धरना-प्रदर्शनों में हाज़िरी रहती तो मालिक के ख़िलाफ़ कड़ी पुलीस कार्रवाई भी करवाई जा सकती थी। राजकुमार रविन्दर कुमार टेक्सटाइल के सभी मज़दूर हड़ताल के दौरान रोज़ाना इकट्ठे होते थे। कम संख्या होने के बावजूद उनकी जीत का यह एक अहम कारण था।

दोनों ही हड़तालों में माँगें तय करने, फैसला लेने, सरकारी अधिकारियों व मैनेजमैंट से बातचीत करने के लिए जनवादी तौर तरीकों का पालन किया गया। राजकुमार रविन्दर कुमार टेक्सटाईल के मामले में तो सारे मज़दूरों की हाजिरी में मालिक और सरकारी अधिकारियों से बातचीत होती थी। सभी की सहमती से ही समझौता किया गया। ओक्टेव क्लाथिंग के मज़दूरों ने आम सहमती से 13 सदस्यी कमेटी का चुनाव किया। कमेटी हर मुद्दे पर तमाम मज़दूरों की मीटिंग मे विस्तार से बातचीत और आम सहमती बनाने का तरीका अपनाया। कुछ मुद्दों पर बहुमत के हिसाब से फैसले लिए गए। संघर्षशील मज़दूरों ने पहली बार जनवादी तौर तरीकों से किसी यूनियन को संघर्ष का संचालन करते देखा था और वे इससे काफी प्रभावित हुए। संघर्ष का जनवादी तौर तरीका ही था जिसके कारण मज़दूर मालिकों के ख़िलाफ़ लम्बी लड़ाई लड़ने को तैयार हो हुए थे।

मौजूदा समय में जब कारख़ाना इलाक़ों में मालिकों का एक किस्म का जंगल राज क़ायम है, मज़दूरों के अधिकारों को बर्बरता पूर्वक कुचला जा रहा है, जब सरकार, पुलिस-प्रशासन, श्रम विभाग आदि सब सरेआम मालिकों का पक्ष लेते हैं, जब मज़दूरों में एकता का बड़े पैमाने पर अभाव है और दलाल ट्रेड यूनियन व नेताओं का बोलबाला है, ऐसे समय में छोटे पैमाने पर ही सही मज़दूरों द्वारा एकजुटता बनाकर लड़ना और एक हद तक जीत हासिल करना महत्वपूर्ण बात है।

– लखविन्दर

(पेज 3 से आगे)

चॉकलेट उद्योग का ग़ुलाम बचपन

कार्ल मार्क्स ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'पूँजी' में कहा है, "पूँजीवादी वैभव का पूरा अम्बार स्त्रियों और मासूम बच्चों के ख़ून में लिथड़ा होता है, उसका एक बड़ा हिस्सा उनके सस्ते श्रम को निचोड़कर तैयार किया जाता है।" यह पूँजीवाद का एक "खुला रहस्य" है, एक "जगजाहिर सी गुप्त बात" है, जिस पर तमाम स्वंयसेवी संस्थाएँ और अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन भी पर्दा डालने की लगातार, हरचन्द कोशिशें करते रहते हैं और ऐसा दिखाते हैं मानो बच्चों के श्रम का शोषण सिर्फ़ कुछ लालची लोगों द्वारा किया जाता है।

चॉकलेट का नाम सुनते ही तमाम लोगों के मन में मिठास घुल जाती है। मगर क्या आपने चॉकलेट को कभी गौर से देखा है? अगर नहीं तो एक बार उठाइये। उसके चिकने, मुलायम, चमकदार टुकड़ों को टटोलिये। शायद उनके बीच आपको उन बच्चों की कराहें सुनाई देंगी, जिन्होंने उसे तैयार करने में अपने हाथ, पैर, कन्धे ज़ख़्मी किये हैं, आपकी जीभ स्वादिष्ट चॉकलेट का लुत्फ़ ले सके इसके लिए अपना बचपन लुटाया है। जिस चॉकलेट को खाकर कई लोग "मानसिक सुकून" हासिल करते हैं, उसको बनाने वाले बाल मज़दूरों का जीवन किस भयंकर दमन-उत्पीड़न को झेलता है, उसको जानने के लिए आइये पश्चिमी अफ़्रीका और आइवरी कोस्ट के जंगलों वाले इलाक़ों में चलते हैं।

चॉकलेट कोकोआ बीन से बना हुआ एक उत्पाद है, जो पश्चिमी अफ्रीका, एशिया और लातिनी अमेरिका जैसे उष्ण कटिबन्धीय परिवेश में पैदा होता है। कोकोआ बीन से ही कोकोआ बनता है जो चॉकलेट की मुख्य सामग्री होती है। पश्चिमी अफ़्रीका के देशों, ख़ासकर घाना और आइवरी कोस्ट पूरी दुनिया को 70 प्रतिशत से भी ज़्यादा कोकोआ बीज उपलब्ध कराते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार 2010 में चॉकलेट का बाज़ार 4244 करोड़ डॉलर था जो 2016 में 5014 करोड़ डॉलर हो गया। पश्चिमी अफ़्रीका में कोकोआ एक ऐसी फ़सल है जो बाज़ार के लिए ही पैदा की जाती है। और आइवरी कोस्ट का 60 प्रतिशत राजस्व कोकोआ के निर्यात से ही आता है। चॉकलेट उद्योग बहुत ही गुपचुप तरीके से काम करता है। वहाँ के बाल मज़दूरों के भंयकर शोषण और ग़ुलामी की तस्वीरें जल्दी सामने नहीं आ पाती हैं क्योंकि जो पत्रकार सरकार के भ्रष्टाचार को सामने लाने की कोशिश करता है उसका अपहरण कर लिया जाता है या मार दिया जाता है। 2010 में आइवरी कोस्ट की सरकार ने तीन पत्रकारों को वह रिपोर्ट ना छापने की धमकी दी थी जो कोकोआ सेक्टर के अमानवीय हालात को उजागर करने वाली थी।

पश्चिमी अफ़्रीका अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कोकोआ सप्लाई करता है। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ जैसे हर्शले, नेस्ले, मार्क भी इन्हीं से कोकोआ खरीदती हैं। अमेरिका की सबसे बड़ी चॉकलेट कम्पनी हर्शले सालाना 40 करोड़ किलो चॉकलेट का उत्पादन करती है। चूँकि चॉकलेट उद्योग में लगभग हर साल बढ़ोत्तरी होती है, इसीलिए सस्ते कोकोआ की माँग भी बढ़ती जाती है। जो किसान सिर्फ कोकोआ ही पैदा करते हैं, वे प्रति दिन 2 डॉलर से भी कम कमा पाते हैं जो कि ग़रीबी रेखा से काफ़ी नीचे है। इसीलिए ख़ुद को जीवित रखने के लिए वे ज़्यादातर काम कम खर्च पर बच्चों से करवाते हैं।

पश्चिमी अफ़्रीका के ज़्यादातर बच्चे भयंकर ग़रीबी की हालत में हैं इसीलिए अपने परिवार को सहायता पहुँचाने के लिए बहुत कम उम्र में ही काम करने लग जाते हैं। बहुत से बच्चों को तस्कर उनके रिश्तेदारों और परिवार वालों को अच्छा काम और अच्छी तनख़्वाह का वायदा करके ले आते हैं और उन्हें कोकोआ फ़ार्म मालिकों को बेच देते हैं। ये तस्कर ज़्यादातर बच्चों को आस-पास के छोटे-छोटे देशों में भेज देते हैं, जैसे बुर्कीना फासो और माली (जो कि दुनिया के सबसे ग़रीब देशों में से हैं)। एक बार कोकोआ फ़ार्म में लग जाने के बाद इन बच्चों को कई-कई सालों तक परिवार वालों से मिलने नहीं दिया जाता। इन बच्चों की औसत उम्र 12 से 16 वर्ष की होती है जिसमें 40 प्रतिशत लड़कियाँ होती हैं। कई बच्चे 5-6 वर्ष के भी होते हैं।

जिस चॉकलेट से मुनाफ़ाखोरों की तिजोरियाँ भरती हैं, करोड़ों का वारा-न्यारा होता है, उन्हें बनाने वाले बच्चों को ग़ुलामों की तरह खटना पड़ता है। उनके काम की शुरुआत सुबह 6 बजे से हो जाती है जो 12-14 घंटे लगातार चलता रहता है। बच्चों में से कुछ पहले आरामशीन से जंगल को साफ़ करते हैं, कुछ कोकोआ पेड़ पर चढ़कर छुरे की मदद से बीज तोड़ते हैं। मालूम हो कि कोकोआ फ़ार्म में इस्तेमाल होने वाला यह छुरा काफ़ी भारी, लम्बा और तेज़ धार वाला हथियार होता है। बीज तोड़ने के बाद फिर उन्हें लम्बी बोरियों में भरकर जंगल से लाते हैं। एक बाल मज़दूर ने बताया कि कुछ बोरे तो हमसे भी बड़े होते हैं, जिन्हें दो व्यक्ति मिलकर हमारे सर पर रखते हैं और हमसे ज़रा भी देरी हुई तो बुरी तरह पिटाई करते हैं। सिर पर भारी बोरे रखने के अलावा एक हाथ में बीजों का बड़ा गुच्छा भी पकड़कर लाना होता है।

काम यहीं समाप्त नहीं होता। पेड़ों से बीज तोड़ने के बाद छुरे की मदद से उसका ऊपरी हिस्सा खोलना होता है जिससे चॉकलेट बनता है। बार-बार छुरे की वार बीजों पर करनी पड़ती है, जिससे माँस कट जाने का ख़तरा लगातार बना रहता है। ज़्यादातर बच्चों के हाथ, पैर, बाँहों और कन्धों पर छुरे के गहरे ज़ख्मों के निशान होते हैं। इसके अलावा घाना और आइवरी कोस्ट में बीजों पर बहुत से कीड़े लग जाते हैं जिन्हें ख़त्म करने के लिए काफ़ी मात्रा में औद्योगिक केमिकल का इस्तेमाल करना पड़ता है। घाना में 10 साल के बच्चे बिना किसी सुरक्षात्मक कवच के बीजों पर ख़तरनाक रसायनों का छिड़काव करते हैं।

रोज़ 12-14 घंटे हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी इन मासूम बच्चों को फ़ार्म मालिक घटिया खाना देते हैं जैसे मक्के की लपसी और केला। इसके अलावा इन्हें बिना खिड़की वाली इमारत में लकड़ी के कठोर तख़्त पर सोना पड़ता है जहाँ ना तो पीने का साफ़ पानी होता है और ना ही बाथरूम। अगर कोई बच्चा धीमे काम करता है या काम में सुस्ती दिखाता है तो उसे बुरी तरह मारा-पीटा जाता है। उनकी प्रताड़ना से बच्चे भाग ना जायें इसीलिए रात में उनके कमरों को ताला लगा दिया जाता है। घाना के कोकोआ फ़ार्म में 10 प्रतिशत और आइवरी कोस्ट के 40 प्रतिशत बच्चे स्कूल नहीं जाते। शिक्षा के अभाव में कोकोआ फ़ार्म के बच्चों के पास ग़रीबी हटाने का और कोई रास्ता भी नहीं बचता। एक कोकोआ मज़दूर ने बताया कि पिटाई हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा बन चुकी है। दृशा नाम का एक बाल मज़दूर, कुछ ही दिन पहले कोकोआ फ़ार्म की ग़ुलामी से मुक्त हुआ है, उसने जीवन में कभी चॉकलेट नहीं खायी। उसने कहा कि जो लोग हमें कठिनाइयों में डालकर आनन्दित होते हैं, जो लोग चॉकलेट खाते हैं वह दरअसल हमारा माँस खाते हैं।

पूरी दुनिया को एक बाज़ार में तब्दील करके जहाँ विकास की ऊँचाइयों को छूने के दावे किये जा रहे हैं, वहाँ इन बच्चों को नर्क के अँधेरे में ढकेल देने वाले हाथों की शिनाख़्त की जानी चाहिए।

मुनाफ़े की अन्धी हवस में पूँजीपति सस्ते से सस्ता खरीदने और महँगे से महँगा बेचने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। और सस्ता श्रम उन्हें महिलाओं और बच्चों से ही मिल सकता है। इसीलिए वह तमाम मासूमों की ज़िन्दगियाँ दाँव पर लगाकर अकूत मुनाफ़ा बटोर रहे हैं। लूट, शोषण और मुनाफ़े पर टिकी इस आदमख़ोर व्यवस्था को तबाह किये बिना हम बच्चों को बचा नहीं सकते क्योंकि जो व्यवस्था हर हाथ को काम देने के बजाय लगातार बेरोज़गारों की फ़ौज खड़ी करती जा रही है, जो व्यवस्था शिक्षा को खरीद-फ़रोख़्त का सामान बना रही है, उस व्यवस्था के भीतर से बाल मज़दूरों और ग़ुलामों की कतारें पैदा होती रहेंगी।

– नमिता

क्रान्तिकारी संगठनों ने अमर शहीद सुखदेव का जन्म दिन मनाया

शहीद सुखदेव का जन्म स्थान लुधियाना का नौघरा मोहल्ला इंकलाबी नारों से गूँजा

सैंकड़ों लोगों को इकट्ठ ने शहीद सुखदेव के सपनों का समाज बनाने के लिए जद्दोजहद जारी रखने का संकल्प लिया

शहीद सुखदेव के जन्मदिन (15 मई 201त्6) पर उनके जन्म स्थान नौघरा मोहल्ला में बिगुल मज़दूर दस्ता, लोक मोर्चा पंजाब, और इंकलाबी केन्द्र पंजाब द्वारा संयुक्त तौर पर शहीद सुखदेव का जन्मदिन मनाया गया। घण्टा घर चौंक के नज़दीक नगर निगम कार्यालय से लेकर नौघरा मोहल्ला तक पैदल मार्च किया गया। शहीद सुखदेव की यादगार पर लोगों ने फूल भेंट किये। इलाक़े में संगठनों द्वारा जारी एक पर्चा भी बाँटा गया। जगह-जगह नुक्कड़ सभाएँ की गयी। इस अवसर पर बिगुल मज़दूर दस्ता के नेता लखविन्दर, लोक मोर्चा पंजाब के नेता कस्तूरी लाल और इंकलाबी केन्द्र पंजाब के नेता सुखदेव सिंह ने लोगों को सम्बोधित किया।

वक्ताओं ने कहा कि उनके लिए शहीद सुखदेव को याद करना कोई रस्मपूर्ति नहीं है। क्रान्तिकारी शहीदों की कुर्बानियाँ मानवता की लूट, दमन, अन्याय से मुक्ति चाहने वाले और इस खातिर जूझने वाले लोगों के लिए हमेशा से प्रेरणा का स्रोत रही हैं। उन्होंने कहा कि अधिकतर लोग यह सोचते हैं कि शहीद सुखदेव और उनके साथी सिर्फ अंग्रेज हकूमत से आजादी के लिए ही लड़ रहे थे। शहीद सुखदेव व उनके साथियों के विचारों के जितने बड़े दुश्मन अंग्रेज हाकिम थे, उतने ही बड़े दुश्मन भारतीय हाकिम भी हैं।

वक्ताओं ने कहा कि सुखदेव का यह स्पष्ट मानना था कि सिर्फ अंग्रेजी गुलामी से मुक्ति से ही मेहनतकशों की जिन्दगी बेहतर नहीं हो जायेगी, कि जब तक समाज के समूचे स्रोत-संसाधनों पर मेहनतकश लोगों का कब्जा नहीं हो जाता तब तक जनता बदहाल ही रहेगी। वे समाज के स्रोत-साधनों पर चंद धन्नाढ्यों का कब्जा नहीं चाहते थे बल्कि उनकी लड़ाई तो समाजवादी व्यवस्था क़ायम करने के लिए थी। सुखदेव ने लिखा था- "हिन्दुस्तानी सोशियलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी के नाम से ही पता साफ पता चलता है कि क्रान्तिवादियों का आदर्श समाज-सत्तावादी प्रजातंत्र की स्थापना करना है।"

वक्ताओं ने कहा कि शहीद सुखदेव को धर्म, जाति, बिरादरी, क्षेत्र आदि से जोड़कर उनकी कुर्बानी के महत्व को घटाने व उनके विचारों पर्दा डालने की जाने-अनजाने में कोशिशें पहले भी होती रही हैं और आज भी हो रही हैं। लेकिन उनकी लड़ाई तो समूची मानवता को हर तरह की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक गुलामी, लूट, दमन, अन्याय से मुक्त करने की थी। इसलिए जाने-अनजाने में की जा रही ऐसी कोशिशों का डटकर विरोध करना चाहिए। मेहतनकश लोगों का ग़रीबी-बदहाली, बेरोज़गारी से छुटकारा धर्मों, जातियों, क्षेत्रों आदि के भेद मिटाकर एकजुट होकर लुटेरे हाकिमों के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी वर्ग संघर्ष के जरिए ही हो सकता है।

वक्ताओं ने कहा कि अमीरी-ग़रीबी की बढ़ती खायी, बेरोज़गारी, इलाज योग्य बीमारियों से भी मौतें, बाल मज़दूरी, स्त्रियों के विरुद्ध बढ़ते अपराध, गरीबों की शिक्षा से बढ़ती दूरी, वोटों के लिए लोगों को धर्म-जाति आधारित साम्प्रदायिकता की आग में झोंक देने की तेज़ हो रही घिनौनी साजिशें, कदम-कदम पर साधारण जनता पर बढ़ता जा रहा ज़ोर-जुल्म - यही वो आज़ादी है जिसके गुणगान देश के हाकिम पिछले 70 वर्षों से करते आएँ हैं। शहीद सुखदेव के जन्मदिन पर इंकलाबी शहीदों की सोच अपनाने व फैलाने का प्रण करने व उनके सपनों के समाज के निर्माण की ज़ोरदार तैयारी में जुट जाने का आह्वान किया।

– बिगुल संवाददाता

वज़ीरपुर गरम रोला मज़दूरों की लम्बी हड़ताल के 2 साल होने पर

हड़ताल के सबकों को याद रखो!

मज़दूर वर्ग की मुक्ति के दर्शन मार्क्सवाद के अनुसार ज्ञान के तीन स्रोत होते हैं – उत्पादक व्यवहार, वर्ग संघर्ष और वैज्ञानिक प्रयोग। हम मज़दूरों के लिए और उनके हिरावल के लिए ज्ञान के तीन स्रोत में से एक स्रोत बेहद महत्वपूर्ण होता है। यह है वर्ग संघर्ष। हड़ताल वर्ग संघर्ष की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होती है। इसमें मालिक और मज़दूर एक दूसरे के सामने होते हैं। हड़ताल मज़दूरों का मालिकों के ख़िलाफ़ वह हथियार होती है जिसके आगे मालिक-पुलिस-प्रशासन और सरकार भी बेबस हो जाते हैं। रूस में लेना की सोने की खदानों में हुई हड़ताल ने क्रान्ति की आग भड़काई थी तो भारत में मज़दूरों ने सन '42 से '47 के बीच अनगिनत देशव्यापी हड़तालों द्वारा ब्रिटिश हुकूमत के सत्ता छोड़ने की गति तेज़ कर दी थी। आज फ़्रांस के मज़दूर देशभर में हड़ताल पर हैं और सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में बदलावों के ख़िलाफ़ सड़क पर हैं। बेंगलोर, मुन्नार से लेकर गुड़गाँव में मालिकों की मनमानी और शोषण के ख़िलाफ़ मज़दूर अपने इस हथियार का इस्तेमाल करते हैं। वज़ीरपुर में 2014 में गरम रोला फैक्टरियों में शुरू हुई हड़ताल समस्त स्टील मज़दूरों की हड़ताल बन गयी थी। इस हड़ताल के दौरान हुए प्रयोग आज भी मज़दूरों की स्मृतियों में मौजूद हैं। राजा पार्क में मज़दूरों की सभा, सामुदायिक रसोई से लेकर इलाक़े को जाम कर देने वाली हुंकार रैलियाँ आज भी वज़ीरपुर के हर मज़दूर को याद हैं। इस हड़ताल को हुए दो साल बीत चुके हैं, लेकिन जैसे-जैसे समय बीत रहा है और इलाक़े में मालिकों का शोषण बढ़ रहा है, मज़दूर इसके महत्त्व को समझने लगे हैं। मालिकों और दलालों के तमाम कुत्सा-प्रचार के बावजूद मज़दूर अपने संघर्ष के जज़्बे और हड़ताल को याद करते हैं। आज पीछे मुड़कर इस संघर्ष का मूल्यांकन करने पर और आज की परिस्थिति में इसे रखकर देखने पर कुछ सबक उभर कर आते हैं।

2014 की हड़ताल

वज़ीरपुर में हड़ताल की गरम रोला फैक्टरियों से शुरुआत हुई जहाँ मज़दूरों ने वेतन बढ़ोतरी की माँग को लेकर काम ठप्प कर दिया। बाज़ार में बढ़ती कीमतों और मुनाफ़े के बढ़ने के बाद भी मालिक मज़दूरों का वेतन बढ़ाने को तैयार नहीं थे और बार-बार की माँगों की अनसुनी से तंग आकर जून 2014 में मज़दूरों ने अपना वाजिब हक़ माँगने के लिए हड़ताल की परन्तु इस हड़ताल के ख़िलाफ़ इलाक़े के सारे मालिक, दलाल और पुलिस प्रशासन एकजुट हो गये। मज़दूरों का साथ तमाम मज़दूरों ने दिया और गरम रोला के मज़दूरों के साथ ठण्डा रोला, पावर प्रेस, तेज़ाब, पोलिश, रिक्शा, हेवी लेबर के मज़दूर भी आ गये और इलाक़े के सभी आम लोगों ने मज़दूरों का साथ दिया। मज़दूरों ने मिलकर 'दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन' बनायी और उसे पंजीकृत करवाने का फैसला लिया। मज़दूरों ने काम के घंटे 8 करने और न्यूनतम वेतन की माँग की। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण था क्योंकि ये माँगें मज़दूर वर्ग की राजनीतिक माँगें हैं जो इस व्यवस्था के नग्न शोषण को उघाड़ देती हैं। फैक्टरी मालिकों ने लेबर कोर्ट में हार मान ली परन्तु फैक्टरियों में मज़दूरों के हक़ मानने से इंकार कर दिया। फिर भी लम्बे समय तक फैक्टरियों में 8 घंटे काम चलता रहा। इस हड़ताल के बाद मालिकों ने मज़दूरों का वेतन 1500 बढ़ा दिया। हड़ताल में हम जीते परन्तु मालिक ने हमारी जीत को आंशिक जीत में तब्दील कर दिया। परन्तु यह पहली लड़ाई थी।

इसी वर्ष 2016 में भी गरम रोला और मज़दूरों की माँग पर और यूनियन की चिट्ठी जाने के बाद ज़्यादातर मालिकों ने मज़दूरों का वेतन बढ़ा दिया है या बढ़ाने का वायदा किया है। यह हमारी 2014 की हड़ताल का ही नतीजा है। 2014 के बाद से ही यूनियन के ख़िलाफ़ मालिकों और दलालों ने कुत्सा प्रचार जारी रखा है। हालाँकि 2014 की हड़ताल के दौरान और फिर बाद में हमने दलालों को अपने बीच से निकाल बाहर किया फिर भी दलाल दीमक की तरह अपना काम करने में लगे रहे। अफ़वाहों के ज़रिये यूनियन के प्रति मज़दूरों में अविश्वास पैदा किया गया। कभी यह कह कर कि हड़ताल की वजह से चीन का माल आ रहा है तो कभी फैक्टरियाँ उजड़ने का ख़तरा दिखा कर। हमें एक बात समझ लेनी होगी कि यह व्यवस्था मुनाफ़े के आधार पर चलती है। मुनाफ़ाख़ोरी के पैरों के नीचे मज़दूर की खोपड़ी चूर-चूर भी हो जाती है। मज़दूर वर्ग की यूनियन और हड़ताल ही उसका हेल्मेट बनती है जो मज़दूर के अस्तित्व के लिए ज़रूरी है। मालिक हर हमेशा मज़दूर से उसके ये हथियार भी छीन लेना चाहता है। यह बात हमें गाँठ बाँध लेनी चाहिए। आज इलाक़े में मज़दूरों की ताक़त पहले के मुकाबले बिखरी हुई है और 2014 में वज़ीरपुर के समस्त मज़दूरों ने जिस एकजुटता का परिचय दिया था वह आज मौजूद नहीं है। हड़ताल के बाद फैक्टरी से कई मज़दूरों को निकाला गया और कई बहादुर मज़दूरों ने काम ख़ुद छोड़ दिया और आज यूनियन उनके केस लेबर कोर्ट में लड़ रही है जिनमें कुछ लोग केस जीतने वाले हैं । लेकिन पिछले दो साल में गरम रोला में ही नहीं कई फ़ैक्टरियों से मज़दूरों को निकाला गया और मालिकों ने बदसलूकी की जिनके मुक़दमे भी यूनियन लड़ रही है। परन्तु हमें सिर्फ क़ानूनी ताक़त नहीं सड़क पर उतरने की अपनी ताक़त को भी मज़बूत करना होगा। हमें फिर से सभी स्टील मज़दूरों को एकजुट करना होगा। सिर्फ गर्म, ठंडा और हेवी के नाम पर इकट्ठा होने की जगह वज़ीरपुर के सभी मज़दूरों को स्टील मज़दूरों के रूप में एकजुट होना होगा। अगर अपनी इन बातों को समेट कर निचोड़ निकालें तो ये तीन सबक हमें याद रखने होंगे।

पहला सबक – दलालों को अपने बीच से बाहर करो!

यह हमारी हड़ताल का सबसे बुनियादी सबक है। कोई भी संघर्ष चाहे कहीं हड़ताल चल रही हो या न चल रही हो इन दलालों और भितरघातियों की वजह से हारा जाता है। 2014 की हड़ताल में भितरघातियों की भरमार थी। रघुराज और 'इंकलाबी' संगठन की दलाली से पूरा वज़ीरपुर वाकिफ़ है। रघुराज लम्बे समय तक हमारी यूनियन में रहा और मज़दूरों के संघर्ष में मिल रहे पैसे को जमा कर रहा था जिससे कि हड़ताली मज़दूरों की रसोई चल सके परन्तु अचानक जब यह पता चला कि पैसा ख़त्म हो गया तो इससे हिसाब माँगा गया जिसे देने से इसने साफ़ मना कर दिया। जब मज़दूरों ने यूनियन पंजीकरण की बात की तो मालिकों की भाषा बोलते हुए इसने यूनियन पंजीकरण के ख़िलाफ़ काम किया। राजा पार्क में रघुराज को धक्के मारकर मज़दूरों ने अपनी सभा से बाहर किया। इसके साथ आजकल कुछ 'क्रान्तिकारी' संगठन के लोग घूमते नज़र आते हैं जिन्होंने जगह-जगह मज़दूरों के आन्दोलन को डुबाने का काम किया और पुलिस से लेकर मैनेजमेंट के साथ शर्मनाक समझौते करवाये। यह अराजकतावादी संघाधिपत्यवादी संगठन कहीं भी स्वतंत्र रूप से मज़दूरों के बीच काम नहीं कर रहा पर ये लोग अकसर रघुराज सरीखे दलालों की पूँछ पकड़कर आन्दोलन में चिपके रहते हैं। इनकी सबसे बड़ी बीमारी राजनीतिक सवाल न उठा पाना है। इस प्रवृत्ति को लेनिन ने अर्थवाद का नाम दिया था। यह प्रवृत्ति मज़दूर आन्दोलन की सबसे बड़ी दुश्मन होती है। हमें यह बात समझ लेनी चाहिए कि मालिक हमेशा इन दलालों और अर्थवादियों के जरिये मज़दूरों को कमज़ोर बनना चाहता है। आज भी रघुराज और उसके साथ अर्थवादी संगठन मज़दूरों के बीच घूमते हैं। इन्हें अपने बीच से खदेड़ कर ही हम अपनी एकता को मज़बूत कर सकते हैं।

दूसरा सबक – अपने बीच की दूरियों को मिटाकर एकता क़ायम करो!

आज जगह-जगह मज़दूर अपनी-अपनी फ़ैक्टरी की लड़ाई लड़ रहे हैं और अपनी सामूहिक ताक़त से ख़ुद को काटे बैठे हैं। हमें अपनी पेशागत ताक़त यानी गरम, ठंडा, हेवी, प्रेस, पोलिश आदि कामों में लगे तमाम मज़दूरों की सामूहिक ताक़त को मज़बूत बनाना होगा।

तीसरा सबक – अपनी यूनियन से जुड़ो और उसे मज़बूत करो!

एकता हवा में नहीं बनती। मज़दूर जब एक साथ खड़े होते हैं तो उन्हें एक करने का काम उनकी यूनियन करती है जिसमें मज़दूरों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं। मज़दूर अपने बीच से चुनाव करके यूनियन की नेतृत्वकारी समिति का गठन करते हैं जो मज़दूरों के आन्दोलन का नेतृत्व करती है। आज दिल्ली इस्पात उद्योग मज़दूर यूनियन ही वज़ीरपुर के मज़दूरों की क्रान्तिकारी यूनियन है जिसका गठन मज़दूरों ने अपने बीच से किया था। इलाक़े में प्रवास के चलते बड़ी संख्या में बाहर से मज़दूर आये हैं और उन्हें भी यूनियन से जोड़कर यूनियन को मज़बूत बनाना होगा।

– सनी सिंह

वज़ीरपुर में जनता के माँगपत्रक अभियान की शुरुआत!

दिल्ली में वज़ीरपुर इलाक़े की झुग्गियों में लोगों समस्याओं को लेकर वज़ीरपुर जन अधिकार संघर्ष समिति की ओर से जन माँगपत्रक अभियान की शुरुआत की गयी है। वज़ीरपुर की झुग्गियों को बसे हुए करीब 30 साल से ऊपर होने जा रहे हैं पर झुग्गी में रहने वालों की बुनियादी समस्याएँ ज्यों की त्यों हैं। पानी की किल्लत, जाम नालियाँ, बीमारियों में डूबी बस्ती, स्टील फैक्टरियों में बहता ख़ून, खुले में शौच की मजबूरी आज भी वज़ीरपुर की जनता की आम समस्या है। केन्द्र और राज्य की सरकारें और नगर निगम में नेताओं के चेहरे और पार्टियाँ बदलती रही हैं। पर यहाँ के लोगों की ज़िन्दगी में बदलाव नहीं आया है। बदलाव चुनावबाज़ पार्टियों के भरोसे रहकर कभी भी नहीं मिला है। सिर्फ जनसंघर्ष से ही हम अपने अधिकार हासिल कर सकते हैं क्योंकि चुनावबाज़ पार्टियों की सरकारें पूँजीपतियों और अमीरज़ादों की नुमाइन्दगी करती हैं। इलाक़े के मालिकों से लेकर बड़े दुकानदारों और व्यापारियों के लिए सरकार ख़ुशी-ख़ुशी काम कर भी रही है। सरकार ने व्यापारियों पर पड़ने वाली वैट की रेड बन्द कर दी है। फैक्ट्री मालिकों के ऊपर भी श्रम विभाग महरबान हो रहा है। वज़ीरपुर की सड़क पार करते ही उच्च मध्यवर्गीय कॉलोनी अशोक विहार और शालीमार बाग में बेहद कम आबादी के लिए सरकार बिजली, पानी से लेकर स्वास्थ्य की हर सुविधा मुहैया कराती है। अपने को आम आदमी कहने वाली आम आदमी पार्टी ने दिल्ली विधानसभा चुनाव में वायदा किया था कि झुग्गी वालों को पक्का मकान दिया जायेगा पर अब वे इस बात पर बिलकुल चुप हैं और इस माँग को नये-नये तमाशे कर लोगों की याददाश्त से ग़ायब कर रहे हैं।

वज़ीरपुर की जनता की माँगें

पानी इंसान के जीवन की बुनियादी ज़रूरत है पर वज़ीरपुर की चन्द्रशेखर कॉलोनी से लेकर उधमसिंह पार्क, सुखदेव नगर, जेलर बाग तक में आये दिन पानी की किल्लत रहती है। कभी पानी नहीं आता है तो कभी नल में नाली का पानी आता है। लोग टैंकरों के इन्तज़ार में घण्टों खड़े रहते हैं। दूसरा, रोज़ फैक्टरी में किसी-न-किसी मज़दूर का हाथ कट जाता है, कोई गन्दा पानी पीने से बीमार पड़ता है, तो कोई खाने की कमी से, परन्तु सही इलाज की कोई व्यवस्था नहीं है। न तो सरकार अपनी डिस्पेंसरी की हालत सुधारती है और न ही वज़ीरपुर की आबादी देखते हुए इलाक़े में अस्पताल खोलती है।

झुग्गियों में आये दिन नालियाँ जाम रहती हैं और बारिश आने पर तो झुग्गी में जगह-जगह पानी जमा हो जाता है जिसके कारण डेंगू, चिकनगुनिया व कई बीमारियाँ फैलती हैं। शौचालय ख़ुद बीमारियों का अड्डा है। दूसरे, लोगों की संख्या के अनुसार शौचालयों की संख्या बेहद कम है। इलाक़े में नशाख़ोरी बड़ी समस्या है। स्मैक, गांजा के धन्धेबाज से लेकर देशी शराब का धन्धा करने वाले वज़ीरपुर के नौजवानों की नसों में ज़हर घोलते हैं और यह सब सरकार और पुलिस की पनाह में चलता है। पर नेताओं-मंत्रियों के लिए ये मुद्दे गैर-ज़रूरी हैं!

वज़ीरपुर की जनता का माँगपत्रक

1. वज़ीरपुर की झुग्गियों में पानी की समस्या तुरन्त हल हो! हर गली में पानी की पक्की लाइन बिछाई जाये।

2. दिल्ली सरकार वज़ीरपुर इलाक़े में 2 अस्पताल खोले।

3. नये शौचालय खोले जायें और शौचालय नियमित साफ़ किये जायें।

4. नालियों को पक्का करने व नालियों को ढँकने का काम तुरन्त शुरू किया जाये।

5 . इलाक़े में नशाख़ोरी के अड्डे तुरन्त बन्द हों।

6. सरकार झुग्गी के बदले पक्के मकान देने की समय सीमा बताये।

7. वज़ीरपुर में 12वीं तक स्कूल की व्यवस्था की जाये।

इन माँगों को लेकर वज़ीरपुर जन अधिकार संघर्ष समिति वज़ीरपुर झुग्गी की गली गली में हस्ताक्षर अभियान चला रही है। जून के पहले महीने में शुरू हुआ यह अभियान इलाक़े के लोगों को जोड़ रहा है।

– बिगुल संवाददाता

अपनी जान जोखिम में डालकर पूँजीवादी समाज का इलेक्ट्रॉनिक कचरा साफ़ करते मज़दूर

दिल्ली के सीलमपुर के ई-कचरा मज़दूरों की ज़िन्दगी की ख़ौफ़नाक तस्वीर

खाये-पीये-अघाये मध्यवर्ग के लोग भारत में पूँजीवादी विकास के फ़ायदों को गिनाते नहीं थकते। इस पूँजीवादी विकास के पक्ष में दलील देते समय वे अक्सर मोबाइल फ़ोन, स्मार्ट फ़ोन, कम्प्यूटर, लैपटॉप, टैबलेट और भाँति-भाँति के इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स के इस्तेमाल में आयी अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी को विकास का पैमाना बताकर अपने राष्ट्र की प्रगति पर खुशी से फूले नहीं समाते। पूँजीवादी समाज में प्रचलित माल-अन्धभक्ति (कमोडिटी फ़ेटेशिज़्म) से ग्रसित लोगों के ज़ेहन में यह बात आती ही नहीं कि जिन मालों का वे उपयोग कर रहे हैं, उनके बनने की प्रक्रिया क्या है। वे यह नहीं देख पाते कि जिन इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स पर वे इतना इतराते हैं उनके बनने की पूरी प्रक्रिया मज़दूरों के निर्मम शोषण व उत्पीड़न पर टिकी होती है। यही नहीं जब वे अपने पुराने इलेक्ट्रॉनिक गैजेट के बदले नये मॉडल के गैजेट लेते हैं तो उनके दिमाग़ में यह विचार ही नहीं आता कि जिन पुराने गैजेट्स को उन्होंने रद्दी में फेंक दिया है उनका क्या होता है। अगर कोई ईमानदारी से इस पूरी प्रक्रिया के बारे में जानने की कोशिश करे तो वह पायेगा कि इन गैजेट्स के बनने की पूरी प्रक्रिया से लेकर उनके कचरों के निस्तारण तक के हर चरण में इंसानी ज़िन्दगी को तबाह करने की अनकही दास्तान है, चाहे वह कांगो जैसे देशों में इन गैजेट्स में लगने वाले टिन व टेंटेलम जैसे खनिजों की खुदाई में लगे मज़दूर हों, या चीन में फॉक्सकॉन जैसी कम्पनियों की फैक्ट्रियों में इन गैजेट्स के उत्पादन में लगे मज़दूरों की ज़िन्दगी हो, या फिर उत्तर-पूर्वी दिल्ली के सीलमपुर इलाक़े में इलेक्ट्रॉनिक कचरे के निस्तारण में लगे ई-कचरा मज़दूर हों, मुनाफ़े की अन्धी हवस में धरती के इस कोने से उस कोने तक विचरण करती पूँजी मुनाफ़ा तो कमाती है, लेकिन इन सभी मज़दूरों की ज़िन्दगी को तहस-नहस करने के बाद। इस लेख में हम दिल्ली के सीलमपुर ई-कचरा केन्द्र में काम करने वाले मज़दूरों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

पिछले दो दशकों में भारत में तथाकथित सूचना क्रान्ति की चमक-दमक के पीछे सीलमपुर जैसे ई-कचरा केन्द्रों में काम कर रहे मज़दूरों की अँधेरी ज़िन्दगी मानो छिप सी जाती है। जहाँ भारत इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स की खपत के मामले में दुनिया के अग्रणी देशों में शामिल है, वहीं दूसरी ओर इन गैजेट्स से पैदा होने वाले ई-कचरे के मामले में यह विकसित देशों को भी मात दे रहा है। लेकिन विकसित देशों में ई-कचरे के निस्तारण के सख़्त क़ानून हैं और उन देशों में पर्यावरण सुरक्षा के साथ-साथ मज़दूरों के लिए आवश्यक सुरक्षा उपकरणों के इस्तेमाल के प्रावधानों को सख़्ती से लागू किया जाता है, जबकि भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों में एक तो सख़्त क़ानून ही नहीं हैं, और जो क़ानून हैं भी उनका पालन भी नहीं किया जाता। नतीजतन भारत में हर साल पैदा होने वाले लगभग तीस लाख टन इलेक्ट्रॉनिक कचरे के टुकड़े-टुकड़े करने और उनको रीसाइकल करने (फिर किसी काम लायक बनाने) के काम का 90 फ़ीसदी अनौपचारिक क्षेत्र में होता है। यही नहीं भारत के लचीले क़ानून और उनका पालन करने वाली संस्थाओं के लचर रवैये का लाभ उठाकर तमाम विदेशी कम्पनियाँ भी अपने इलेक्ट्रॉनिक कचरे को भारत में ही लाकर पटक देती हैं। भारत में हर साल मुम्बई और गुजरात के बन्दरगाहों के ज़रिये क़रीब 50,000 टन विदेशी इलेक्ट्रॉनिक कचरा यहाँ पहले से ही एकत्र इलेक्ट्रॉनिक कचरे के पहाड़ को और बड़ा बना देता है। 'इकोनॉमिक टाइम्स' में छपी एक ख़बर के मुताबिक भारत में ई-कचरा उद्योग लगभग 8,000 करोड़ रुपये का से भी अधिक का है, जिसमें आधे से से ज़्यादा ई-कचरे का कारोबार दिल्ली के सीलमपुर, मायापुरी, पुणे, चेन्नई, मुरादाबाद, बेंगलूरू जैसे बड़े ई-कचरा केंद्रों में होता है।

भारत में सबसे बड़े पैमाने पर ई-कचरा को तोड़ने का काम दिल्ली में किया जाता है। दिल्ली के उत्तर-पूर्व स्थित सीलमपुर में रोज़ाना लगभग एक टन ई-कचरा इलाक़े की लगभग 300 छोटी-छोटी फैक्ट्रियों में तोड़ा जाता है। इन फैक्ट्रियों में बड़ी संख्या में बच्चे और महिलाएँ भी काम करते हैं। ज़हरीले हालात में 10-12 घंटे काम करने के बाद इन मज़दूरों की दैनिक आय 200 रुपये से भी कम की होती है। ये ई-कचरा मज़दूर बिना किसी मास्क या सुरक्षा उपकरण के ही काम करते हैं। वे मदर-बोर्ड या सर्किट बोर्ड को आग की लपटों से पिघलाकर या एसिड में डुबोकर उनमें से लेड (सीसा), मरकरी (पारा), कैडमियम, क्रोमियम जैसे ख़तरनाक पदार्थ और कॉपर, सोना, चाँदी जैसी क़ीमती धातुएँ अलग करते हैं। इस प्रक्रिया में जो ज़हरीला धुआँ निकलता है उसके ज़रिये सीसा और पारा जैसे ख़तरनाक तत्व उनके शरीर में भी चले जाते हैं जो उनके स्नायु तंत्र, उनके फेफड़ों और गुर्दे पर बहुत नुक्सानदेह असर डालते हैं। बच्चों पर ख़ास तौर से इसका बहुत बुरा असर होता है क्योंकि उनकी बीमारियों से लड़ने की क्षमता बहुत कम हो जाती है। पूँजीपतियों की संस्था एसोचैम (एसोसिएशन ऑफ इण्डियन चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज़) के ख़ुद के सर्वेक्षण के मुताबिक भारत के 76 प्रतिशत ई-कचरा मज़दूर दमा, ब्रोंकाइटिस जैसी साँस की बीमारी से ग्रसित हैं। यही नहीं इन मज़दूरों में कैंसर जैसी प्राणघातक बीमारियों की सम्भावना बढ़ जाती है। वर्ष 2010 में दिल्ली के ही मायापुरी कबाड़ी बाज़ार की घटना एक ख़तरे की घण्टी थी जब कोबाल्ट-60 नामक रेडियोधर्मी पदार्थ के विकिरण के असर से एक व्यक्ति की मौत हो गयी थी, जबकि 7 अन्य ज़ख़्मी हो गये थे। इसके बावजूद सीलमपुर, मायापुरी, शास्त्री पार्क, तुर्कमान गेट, मुस्तफ़ाबाद, लोनी, मुंडका, मंडोली जैसी जगहों पर इलेक्ट्रॉनिक कचरे और मेटल-वर्क रिकवरी द्वारा मज़दूरों की ज़िन्दगी में लगातार ज़हर घोलना बदस्तूर जारी है। सीलमपुर जैसे इलाक़ों के नालों में और वहाँ की पूरी आबोहवा में इस कचरे की भयावहता का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

ई-कचरा मज़दूरों की ज़िन्दगी में ज़हर घोलने के अलावा इलेक्ट्रॉनिक कचरे में मौजूद सीसा, पारा, कैडमियम जैसे तत्व पर्यावरण को भी जबर्दस्त नुक़सान पहुँचाते हैं। ये तत्व ज़मीन का उपजाऊपन नष्ट करते हैं, जलाये जाने पर हवा को प्रदूषित करते हैं और भूजल में मिलकर पीने के पानी को भी ज़हरीला बना देते हैं। ज़ाहिर है कि पर्यावरण के विनाश का असर आम ग़रीब आबादी को ही सबसे ज़्यादा झेलना पड़ता है। इस प्रकार इलेक्ट्रॉनिक कचरा न सिर्फ़ ई-कचरा मज़दूरों को बल्कि मज़दूरों की आने वाली पीढ़ियों की ज़िन्दगी में भी ज़हर घोलने की सम्भावना रखता है।

सवाल यह उठता है कि इस ख़तरनाक ई-कचरे और उससे मज़दूरों की ज़िन्दगी में ज़हर घोलने के लिए कौन ज़िम्मेदार है? सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी इलेक्ट्रॉनिक सामान जैसे कि मोबाइल, कम्प्यूटर, चार्जर, हेडफोन, सीडी, एलसीडी/प्लाज़्मा टीवी, रेफ्रिजरेटर, एसी आदि बनाने वाली कम्पनियों की है। ये दैत्याकार कम्पनियाँ अपने-अपने ब्राण्डों की मार्केटिंग, विज्ञापन और नये-नये मॉडल के लिए शोध-अनुसंधान में तो खूब पैसा ख़र्च करती हैं क्योंकि इसके ज़रिये वे अपने ग्राहक बनाकर अकूत मुनाफ़ा कमाती हैं। लेकिन इस मुनाफ़े के धन्धे के अन्त में जो इलेक्ट्रॉनिक कचरा बनता है उनका निस्तारण करने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं होती क्योंकि उस पर ध्यान देने से उनके मुनाफ़े में गिरावट आ जायेगी। विकसित देशों में पर्यावरण क़ानूनों के सख़्ती से लागू होने की वजह से इन कम्पनियों को मजबूरन ई-कचरे के निस्तारण की ज़िम्मेदारी उठानी पड़ती है, लेकिन भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों

(पेज 15 पर जारी)

मुम्बई में लगातार ग़रीबों के बच्चों की गुमशुदगी के ख़िलाफ़ मुहिम

वेश्यावृत्ति, अंगों के व्यापार, भीख मँगवाने आदि के लिए देशभर में बच्चे ग़ायब करने वाले गिरोह सक्रिय रहते हैं। पूरे देश में ग़ायब होने वाले बच्चों की संख्या के हिसाब से महाराष्ट्र टॉप पर है। मुम्बई में भी दक्षिण के पॉश वार्डों की अपेक्षा ईस्ट वार्ड से सबसे ज़्यादा बच्चे ग़ायब होते हैं। अमीरों का कुत्ता ग़ायब होने पर भी सक्रिय हो जाने वाली पुलिस ग़रीबों के बच्चों के ग़ायब होने पर भी अक्सर या तो रिपोर्ट ही नहीं लिखती है या फिर रिपोर्ट के बावजूद कार्रवाई नहीं करती है। ग़ायब बच्चों के मां-बाप को एक ओर अपने बच्चों के ग़ायब होने का दुख होता है तो दूसरी ओर पुलिस का संवेदनहीन रवैया उनके घावों पर मिर्च छिड़कने का काम करता है।

मुम्बई के मानखुर्द, गोवण्डी के इलाके में भी लम्बे समय से बच्चों को ग़ायब करने वाले गिरोह सक्रिय हैं। इलाके से अनेक बच्चों के ग़ायब हो जाने के बावजूद पुलिस आज तक किसी गिरोह का पर्दाफ़ाश नहीं कर पायी है। इलाके में नशे का व्यापार करने वाले तमाम गुण्डा गिरोह भी सक्रिय हैं जिसके कारण लड़कियों के साथ छेड़छाड़ की अनेक घटनाएँ होती रहती हैं। लगभग

तीन महीने पहले ज्योर्तिलिंगनगर के इलाके से चार साल की एक बच्ची ग़ायब हो गयी थी जिसकी बाद में लाश बरामद हुई। पोस्टमार्टम में बलात्कार के बाद हत्या की पुष्टि हुई। पुलिस ने दवाब में आकर एक लड़के को गिरफ़्तार किया पर अब उसे सबूतों के अभाव में छोड़ने की तैयारी चल रही है। इस लड़की के ग़ायब होने से कुछ ही दिन पहले उसी गली से एक दूसरी बच्ची भी ग़ायब हुई थी पर उसका भी आज तक कोई पता नहीं चला है। इलाके में ऐसे अनेक मां बाप हैं जिनकी ये कहानी है। नौजवान भारत सभा ने इसी को लेकर इलाके में जून में 15 दिन का अभियान चलाया। उसी के बाद ये तय हुआ कि इस मसले पर पहले तो इलाके के स्थानीय मानखुर्द थाने का घेराव किया जाय व बाद में मुम्बई पुलिस के हैडक्वार्टर का। नौजवान भारत सभा की अगुवाई में 17 जून को बड़ी संख्या में स्थानीय लोगों ने मानखुर्द के ज्योर्तिलिंगनगर से पुलिस स्टेशन तक विरोध मार्च निकाला व बाद में थाने का घेराव किया।

इसके बाद वरिष्ठ पुलिस इंस्पेक्टर एन.एच.शेख को मुम्बई पुलिस कमिश्नर के नाम ज्ञापन भी दिया गया। आन्दोलनकारियों द्वारा उठाये गये तमाम सवालों का पुलिस अधिकारी ने कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया। "जब बच्चों की देखभाल अच्छे से नहीं कर सकते तो उन्हें जन्म ही क्यों देते हो", ऐसे संवेदनहीन सवाल गुमशुदा बच्चों के माँ-बाप से पुलिस कैसे कर सकती है, ये पूछने पर पुलिस इंस्पेक्टर शेख ने कहा कि पुलिस हवलदार के ऐसे शब्दों की तरफ ध्यान मत दीजिये, वरिष्ठ अधिकारी जो बोलते हैं सिर्फ़ उसी की बात कीजिये। जिस चार वर्ष की बच्ची की बलात्कार के बाद हत्या हुई थी, उसकी मां के साथ भी पुलिस ने अशोभनीय बर्ताव किया था। माँ ने जब ये शिकायत इंस्पेक्टर शेख से की तो उन्होने फ़ैसला सुना दिया कि पुलिस तो ऐसा कर ही नहीं सकती। इलाके में नशे के गैरक़ानूनी व्यापार के बारे में पूछने पर वरिष्ठ पुलिस इंस्पेक्टर ने अफ़सोस जाहिर किया कि "कानून में खामियाँ होने की वजह से अपराधियों को कठोर दण्ड नहीं मिलता है व इसी कारण नशे के व्यापार पर रोक लगाना मुश्किल है।"

नौ.भा.स. के नारायण खराडे ने बताया कि मासूम बच्ची के साथ बलात्कार व हत्या प्रकरण में पुलिस ने अगले तीन दिन में चार्जशीट दाखिल करने को कहा है। उसके बाद आन्दोलन की आगे की दिशा तय की जायेगी। पुलिस के असंवेदनशील बर्ताव के बारे में महिला आयोग व मानवाधिकार आयोग के पास भी शिकायत दर्ज करवायी जायेगी।

– बिगुल संवाददाता

किसानों-खेत मज़दूरों की बढ़ती आत्महत्याएँ और कर्ज़ की समस्या

ज़िम्मेदार कौन है? रास्ता क्या है?

(पेज 1 से आगे)

हो गया है। किसानों में ख़ुदकुशियों की दर बाकी आबादी से ज़्यादा है, जहाँ पूरी आबादी में एक लाख के पीछे 10.6 व्यक्ति ख़ुदकुशी करते हैं, वहाँ किसानों में यह एक लाख के पीछे 15.8 ख़ुदकुशियाँ हैं। भारत में हर साल करीब 17,000 किसान ख़ुदकुशियाँ कर रहे हैं। जहाँ पिछले दस सालों के दौरान हर बीते दिन 47 किसानों ने ख़ुदकुशी की, वहीं यह आँकड़ा 2006 के बाद 52 हो गया। यह सारा विश्लेषण नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो के आँकड़ों पर आधारित है कि जब कि विश्वविद्यालयों और खोज संस्थाओं की रिपोर्टें बताती हैं कि भिन्न-भिन्न राज्यों में ख़ुदकुशियों की गिनती इससे भी कहीं ज़्यादा है"।

इन ख़ुदकुशियों के ज़्यादातर मामलों में ख़ुदकुशी का कारण कर्ज़ा है। पंजाब में हुई करीब 7000 ख़ुदकुशियों में से 74 फ़ीसदी किसानों और 58.6 फ़ीसदी खेत मज़दूरों की ख़ुदकुशी का कारण उनकी कर्ज़ा चुका पाने की असमर्थता थी। इसके अलावा फसल का बर्बाद हो जाना, फसल ना बिकना, घाटा होना जैसे भी कारण शामिल हैं। खेत मज़दूरों के मामले में काम का ज़्यादा बोझ, सामाजिक अपमान जैसे कारण भी जुड़ जाते हैं। ख़ुदकुशी करने वालों में से ज़्यादातर किसान ग़रीब और मझोले किसान हैं। आज कृषि सेक्टर पर 52 हज़ार करोड़ रुपए का संस्थागत कर्ज़ा है। पिछले 10 सालों में कर्ज़ा लिये हुए किसानों की गिनती दोगुनी हो गयी है।

पंजाबी यूनिवर्सिटी की ओर से भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद के लिए जनवरी 2016 में कराये गये सर्वेक्षण के अनुसार पंजाब के किसानों-मज़दूरों पर 69,355 करोड़ रुपए का कर्ज़ा है। इसमें से 56,481 करोड़ रुपए संस्थागत कर्ज़े हैं। 2.5 एकड़ की मालिकी वाले किसानों पर औसतन 2,76,839 रुपए, 5 एकड़ तक के किसानों पर 5,57,338 करोड़ रुपए, 10 एकड़ तक वालों पर 6,84,649 रुपए, 15 एकड़ तक वालों पर 9,35,608 करोड़ रुपए और उससे ऊपर वाले किसानों पर 16,7,473 रुपए कर्ज़ा है। 2.5 एकड़ तक वाले 83.3 प्रतिशत किसान और 5 एकड़ तक वाले 88.64 प्रतिशत किसान कर्ज़े में दबे हैं। कुल किसानी का 85.9 फ़ीसदी हिस्सा कर्ज़े में है और एक किसान पर औसतन 5,52,064 रुपए का कर्ज़ा है। धनी किसानों का 8.16 फ़ीसदी हिस्सा ही गैर-संस्थागत (यानी निजी सूदख़ोरों से) कर्ज़े लेता है जबकि छोटे किसानों में यह दर 40 फ़ीसदी तक जा पहुँची है।

खेत मज़दूरों की हालत ज़्यादा बुरी है। एक खेत मज़दूर परिवार पर औसतन 66,330 रुपए का कर्ज़ा है। इनमें से 92 फ़ीसदी मज़दूरों के कर्ज़े गैर-संस्थागत हैं। यानी खेत मज़दूर ज़्यादातर धनी किसानों के ही कर्ज़दार हैं। यह कर्ज़ा चुकाने के लिए उनका पूरा परिवार काम करता है। मर्दों के अलावा औरतें और बच्चे भी फसल बुवाई, कटाई, सब्जियों और फलों को तोड़ने और उन्हें सँभालने का काम करते हैं। खेतों के साथ-साथ मज़दूर परिवार की औरतें और बच्चे कर्ज़ा देने वालों के घरों में साफ-सफाई, कूड़ा- कर्कट, पशुओं की देखभाल जैसे घरेलू काम भी करते हैं। इन खेत मज़दूरों पर मनमर्ज़ी के ब्याज लगाये जाते हैं और उनकी मेहनत का कोई तय मूल्य नहीं होता और उनसे बहुत ज़्यादा काम लिया जाता है। खेत मज़दूरों को मकान बनाने, दवा-इलाज, शादी, पढ़ाई आदि के कारण कर्ज़ा लेना पड़ता है जो बाद में सारे परिवार द्वारा मिलकर काम करने पर भी चुक नहीं पाता है।

किसान के कर्ज़ों और ख़ुदकुशियों के कई तरह के उदाहरण अक्सर देखने को मिल जाते हैं। इनमें से सबसे ज़्यादा यह सुनने को मिलता है कि किसान ख़ुद ही मौत का ज़िम्मेदार है। शादियों में दिखावे के लिए कर्ज़े लेता है और बाद में उससे वो कर्ज़ा चुकाया नहीं जाता। यह पूरी तस्वीर नहीं है। राष्ट्रीय सैंपल सर्वे संगठन के 2005 के आँकड़े के अनुसार किसानों की ओर से लिये गये कर्ज़े का 65 फ़ीसदी हिस्सा खेती में ही खर्च होता है, जबकि घरेलू खर्च (इलाज, शादी, शिक्षा) के लिए लगभग 25 फ़ीसदी और बाकी का 10 फ़ीसदी अन्य खर्चों में इस्तेमाल होता है। इन आँकड़ों से साफ है कि सिर्फ विवाह के खर्चे ही ख़ुदकुशियों के लिए ज़िम्मेदार नहीं है। इसका मतलब यह भी नहीं है कि विवाह पर किया गया व्यर्थ खर्चा सही है। विवाह के खर्चों के कारण किसान कर्ज़दार होते हैं और ख़ुदकुशियाँ भी करते हैं। पर यह पूरी तस्वीर का छोटा हिस्सा है, यह मुख्य कारण नहीं है। इसको बढ़ा-चढ़ाकर पेश करना ही मुख्य कारणों को छिपाना है।

इस कर्ज़े के कारण को लेकर बहुत अस्पष्टता फैली हुई है। अकसर ही कृषि संकट की जड़ें हरित क्रान्ति के मॉडल, किसी सरकार की कुछ नीतियों या फिर अधिक लागत पर किसानों को मिलने वाले कम दाम आदि में देखी जाती हैं। मगर ये सभी बातें संकट के कुछ लक्षणों की ही व्याख्या करती हैं, बुनियादी कारण की नहीं। दरअसल भारत एक पूँजीवादी देश है और यह विश्व पूँजीवादी व्यवस्था का एक हिस्सा है। खेती-किसानी का संकट असल में पूँजीवादी व्यवस्था का एक बुनियादी लक्षण है, या यह कह लें कि पूँजीवादी व्यवस्था ख़ुद ही एक संकट है। पूँजीवादी होने का मतलब है कि यहाँ उत्पादन के साधनों (यानी कारख़ाने, ज़मीनें और खानें आदि) का मालिकाना निजी है जबकि पैदावार सामाजिक है, यानी उत्पादन के साधनों द्वारा चीज़ें पैदा करने में समाज का बहुत बड़ा हिस्सा मेहनत करता है और ये चीज़ें समाज की ज़रूरतों से पैदा की जाती हैं। लेकिन मालिकाना निजी हाथों में होने के कारण पैदावार पर उत्पादन के साधनों के मालिक का कब्ज़ा हो जाता है और वह इनको बेचकर मुनाफ़ा कमाता है। इस कारण क्या पैदा करना है और कितना पैदा करना है यह मालिक अपने मुनाफ़े के हिसाब से तय करते हैं ना कि समाज की ज़रूरतों के अनुसार। इस तरह पूँजीवाद में पैदावार की चालक शक्ति मुनाफ़ा होती है। भारत में कृषि पूरी तरह पूँजीवादी खेती में बदल चुकी है। यानी यहाँ खेती बाज़ार के लिए की जाती है। भारत में किसानी की अनेक परतें हैं। किसानी की इन विभिन्न परतों के हित अलग-अलग हैं और मण्डी के लिए उनमें आपस में मुकाबला होता है। यहाँ बहुसंख्यक किसान छोटे मालिकाने वाले हैं। मण्डी में आने वाले उत्पाद का बड़ा हिस्सा धनी किसानों की ओर से आता है, पर जब खेती मुख्यतया मण्डी के लिए होने लगती है तो छोटे मालिक इस होड़ में अपने आप घसीट लिये जाते हैं। मुनाफ़े के लिए पैदावार में हर कोई ज़्यादा से ज़्यादा पैदा करना चाहता है और मण्डी का ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सा हड़पना चाहता है। इस होड़ में बड़े मालिकों का हाथ ऊपर होता है और मुनाफ़े की दौड़ में छोटे किसान हमेशा पिछड़ जाते हैं। इस तरह किसानी की निचली परतों के एक हिस्से का लगातार उजरती मज़दूरों में कायापलट होता रहता है। ग़रीब किसानों के सिर पर हमेशा पैदावार के साधनों से अलग होने की तलवार लटकती रहती है। कृषि संकट की सबसे ज़्यादा मार तो इस हिस्से पर पड़ती है बल्कि कृषि अर्थव्यवस्था संकट में नहीं होती तब भी ग़रीब किसानों का मण्डी की होड़ में मुक़ाबले से बाहर होना और पैदावार के साधनों से वंचित होना चलता रहता है।

अधिक मुनाफ़े के लिए कृषि की तकनीक, बीज, खाद आदि पर निवेश लगातार बढ़ता रहता है। धनी किसान अधिक मुनाफ़ा कमाने के लिए अधिक बड़े स्तर पर निवेश करते हैं और इसके लिए वह कर्ज़ा भी लेते हैं। उनके लिए कर्ज़ा लेना कोई समस्या नहीं होती बल्कि वह आसानी से प्राप्त होने वाली राशि होती है जिसको ब्याज समेत चुकाकर भी वह मुनाफ़ा कमा लेते हैं। दूसरी ओर ग़रीब और छोटे किसानों को भी मण्डी में टिके रहने के लिए कृषि पैदावार और तकनीक में पैसे लगाने की ज़रूरत होती है और इसके लिए उनको कर्ज़ा लेना पड़ता है। छोटे पैमाने पर पैदावार के कारण उनकी आमदनी भी कम होती है और उनका कर्ज़ा चुकाना मुश्किल हो जाता है। फसल ख़राब होने या ना बिकने की हालत में उनके खर्चे पूरे नहीं होते और वे कर्ज़ा नहीं चुका पाते। इस तरह ग़रीब और छोटे किसानों के कर्ज़े और ख़ुदकुशी की जड़ें पूरी पूँजीवादी व्यव्सथा में, या कह लें कि ज़मीन के निजी मालिकाने में है। जब तक निजी मालिकाना है तब तक छोटे किसानों का पैदावार के साधनों से वंचित होते जाना एक अटल प्रक्रिया की तरह चलता रहेगा। कर्ज़ा उनके पैदावार के साधनों से वंचित होने की गति को कुछ हद तक बढ़ा देता है, पर यह उनके पैदावार के साधनों से वंचित होने का बुनियादी कारण नहीं होता। अगर ग़रीब और छोटे किसान के सिर पर कर्ज़ा ना भी हो तो भी वह धनी किसानों के साथ ज़्यादा देर मुकाबले में खड़े नहीं रह सकते और उन्हें अपनी जगह-ज़मीन से उजड़कर मज़दूरों की कतार में शामिल होना ही होता है।

खेत मज़दूरों का मामला तो और भी ज़्यादा स्पष्ट है। उनके पास पैदावार के साधन ना होने के कारण उनको अपनी श्रम शक्ति बेचने के लिए मजबूर होना पड़ता है, पर उनको अपने श्रम का इतना भी मूल्य नहीं मिलता कि अपने परिवार की बुनियादी ज़रूरतें पूरी कर सकें। इस मज़बूरी के कारण उन्हें कर्ज़ा लेना पड़ता है और वे कर्ज़ के जाल में उलझ जाते हैं।

इस तरह हम देख सकते हैं कि ग़रीब किसानों और खेत मज़दूरों की आत्महत्याओं की जड़ें इस पूँजीवादी व्यवस्था में ही हैं जो दौड़ के पशुओं की तरह उन्हें अपने तरीके से भागने के लिए मजबूर करती है और जो इस दौड़ में टिक नहीं पाता उसे मार दिया जाता है।

किसानों की आत्महत्याओं और कर्ज़े की समस्या के प्रति सरकारों का व्यवहार सदा बेरुखी वाला रहा है। चाहे किसी राज्य की सरकार हो, या केन्द्र की, किसी ने भी ख़ुदकुशी करते किसानों, मज़दूरों को बचाने की कोशिश नहीं की। पंजाब में 2001 से कर्ज़ा माफी विधेयक को लेकर हंगामा चल रहा था, जो अब आने वाले विधानसभा चुनाव को देखकर अप्रैल महीने में पास तो कर दिया गया पर उनको साहूकारों के पक्ष में बना दिया गया जिससे किसानों-मज़दूरों को कोई राहत नहीं मिली। सरकारी विभागों और नौकरशाही में फैला भ्रष्टाचार भी किसानों-मज़दूरों की समस्याओं को और बढ़ाता है। यूपीए सरकार की ओर वर्ष 2008-2015 के दौरान अच्छे कीटनाशकों के लिए पंजाब सरकार को 1700 करोड़ रुपए भेजे गये, पर वह घपलेबाज़ी का शिकार हो गये। कुछ समय पहले कपास को सफेद मच्छर लगने के कारण नकली कीटनाशकों में सरकारी भ्रष्टाचार का मामला सामने आया है। ऐसे कारणों से भी किसान पर संकट की मार पड़ती है और उसको ख़ुदकुशी का रास्ता चुनने के लिए मजबूर होना पड़ता है। पंजाब में ख़ुदकुशी कर चुके किसानों और मज़दूरों के परिवारों को राहत देने की सरकार ने जो योजना अपनायी है वह सिर्फ खानापूरी तक सीमित है। इस योजना के तहत ख़ुदकुशी करने वाले के परिवार को 3 लाख रुपये की सरकारी सहायता मिलेगी, मगर इस सहायता के लिए आने वाले बहुतेरे मामलों को तकनीकी और कागज़ी अड़चनों द्वारा रद्द किया जा सकता है।

पूँजीवादी व्यवस्था में सरकार भी पूँजीपतियों की सेवा के लिए होती है। दूसरे उद्योग के मुक़ाबले कृषि हमेशा पिछड़ जाती है। इसलिए सरकार की ओर औद्योगिक व्यवस्था (सड़कें, फ्लाइओवर आदि) में निवेश करने और औद्योगिक पूँजी को टैक्स छूट, कर्ज़े माफ़ करने जैसी सहायता देने के लिए तो बहुत सारा धन लुटाया जाता है पर कृषि के मामले में यह निवेश नाममात्र ही होता है। इसके अलावा कृषि के लिए भिन्न-भिन्न पार्टियाँ और सरकारें जो करती हैं वह भी धनी किसानों, धन्नासेठों आदि के लिए होता है, ग़रीब किसानों और मज़दूरों के हिस्से में कुछ भी नहीं आता। सरकारों के ध्यान ना देने के कारण ग़रीब किसान और खेत मज़दूर हाशिए पर धकेल दिये जाते हैं।

कृषि कर्ज़ों की सारी प्रक्रिया को समझने से यह साफ होता है कि ग़रीब किसान और मझोले किसानों का कर्ज़ा माफ कर दिया जाये तो इससे उनको कुछ समय के लिए राहत तो मिलेगी, लेकिन छोटी मालिक किसान का पैदावार के साधनों से उजड़कर मज़दूरों में तब्दील होना जारी रहेगा। दूसरे, कुछ समय बाद बाज़ार के नियमों के आगे मजबूर होकर ग़रीब और मझोले किसान फिर से कर्ज़दार हो जायेंगे। इसलिए इनकी आत्महत्याओं को रोकने के लिए कर्ज़ा माफ़ी कोई समाधान नहीं है। इससे बहुत आगे बढ़कर सोचने की ज़रूरत है।

आत्महत्याओं की इन घटनाओं को रोकने के लिए कई नुस्खे सुझाये जाते हैं। सबसे आम नुस्खा कृषि उत्पादों की क़ीमत बढ़ाने का पेश किया जाता है। पंजाब राज्य किसान कमीशन के चेयरमैन डॉ. जी.एस. कालकट का कहना सही है कि 'स्वामीनाथन फार्मूला लागू करके अगर किसान की फसल का पचास फ़ीसदी मुनाफ़े पर भी दिया जाये तो भी राज्य के 70 फ़ीसदी किसान आर्थिक तंगी से बाहर नहीं आ सकते क्योंकि उनके पास बेचने के लिए ज़्यादा अनाज ही नहीं होता।' दूसरे नुस्खों में बदली फसलें या सब्जियाँ आदि बोने की सलाहें दी जाती हैं। पर यह भी कोई हल नहीं है। सब्जियाँ आदि बोकर कोई एक किसान तो टिका रह सकता है पर अगर बहुत से लोग सब्जियाँ बोने लगेंगे तो मण्डी में ज़रूरत से ज़्यादा फसल आ जायेगी और क़ीमतें पहले से भी ज़्यादा गिरने से फिर किसानी का एक हिस्सा तबाह हो जायेगा। यह तो पंजाब में आलू, किन्नू और कपास आदि की फसल के मामले में अक्सर ही देखने को मिलता है। एक और हल ज़मीन का बँटवारा भी पेश किया जाता है। लेकिन अगर सबको थोड़ी-थोड़ी ज़मीन मिल भी गयी तो बाज़ार की होड़ के चलते कृषि में ध्रुवीकरण जारी रहेगा, एक ओर ज़मीन कुछ हाथों में केन्द्रित होती जायेगी और दूसरी ओर ग़रीब किसान पैदावार के साधनों से वंचित होकर मज़दूरों की कतारों में शामिल होते जायेंगे। इस तरह इन सभी नुस्खों के पास इस समस्या का कोई स्थायी हल नहीं है, ज़्यादा से ज़्यादा कुछ नुस्खे थोड़ी देर के लिए ही राहत दे सकते हैं।

(पेज 9 पर जारी)

छत्तीसगढ़ में आदिवासियों के ख़िलाफ़ सरकार का आतंकी युद्ध एक नये आक्रामक चरण में

जनपक्षधर आवाज़ों को बर्बरता से कुचलने की क़वायद तेज़

इस वर्ष उस घटना के 50 साल हो गये जब 1966 में इंदिरा गाँधी की सरकार ने मिज़ोरम राज्य (जोकि तब असम का ही हिस्सा था) की राजधानी आइज़ोल में कई दिनों तक भारतीय वायु सेना की मदद से अपने ही नागरिकों के ऊपर बम गिराये थे। नक्सलवाद यानि वामपंथी उग्रवाद से निपटने के नाम पर कुछ ऐसी ही तैयारी मोदी सरकार भी कर रही है। भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संस्थान (इसरो) की मदद से सीधे हवाई हमले की तैयारियाँ की जा रही हैं। और सब कुछ बिना किसी प्रतिरोध के निपटाने के लिए वहाँ वस्तुपरक रिपोर्टिंग करने वाले पत्रकारों, आदिवासियों की क़ानूनी मदद करने वाले वकीलों एवं तमाम मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को लगातार प्रताड़ित किया जा रहा है। इस राज्य प्रायोजित आतंकी दमन को अनौपचारिक रूप से "मिशन 2016" का नाम दिया गया है।

वर्ष 2004 में ही पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने नक्सलवाद को भारत की आन्तरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा ख़तरा बताया था। छत्तीसगढ़ का आदिवासी तबका तबसे लेकर अब तक सलवा जुडूम और ऑपरेशन ग्रीनहंट जैसे राज्य प्रायोजित आतंकवाद को झेलता रहा है। दमन की इसी नीति को आगे बढ़ाते हुए मोदी सरकार इसे बिल्कुल नये चरण में ले जाने की तैयारी में है। हाल की कुछ घटनाओं पर एक सरसरी निगाह डालने से दमन की भयावहता स्पष्ट हो जाती है।

पत्रकार संतोष यादव जो आदिवासियों की समस्याओं को राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय मीडिया तक सफलतापूर्वक ले जाते रहे हैं, उन्हें पिछले साल नग्न करके उनके साथ मारपीट की गयी। ऐसे ही एक आदिवासी पत्रकार सोमारू नाग को लगातार तीन दिनों तक ग़ैरक़ानूनी ढंग से हिरासत में रखकर प्रताड़ित किया गया। ऑनलाइन समाचार पोर्टल 'स्क्रॉल' के लिए लिखने वाली मालिनी सुब्रमण्यम के घर पर हमला करके उन्हें धमकियाँ दी गईं और अन्तत: उन्हें जगदलपुर छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। आदिवासियों की क़ानूनी मदद करने वाले 'जगदलपुर लीगल एड ग्रुप' से सम्बद्ध वकीलों को भी 'बाहरी' होने के नाम पर लगातार स्थानीय प्रशासन और स्थानीय वकीलों द्वारा प्रताड़ित किया जा रहा है और अब इस समूह के कई वकीलों को वहाँ से भागना पड़ रहा है। मानवाधिकार और सामाजिक कार्यकर्ताओं की भी यही हालत है। प्रसिद्ध कार्यकर्ता बेला भाटिया के ख़िलाफ़ 'विदेशी नक्सल दलाल' कहते हुए पर्चे निकाले गये और आदिवासियों के लिए निर्भीकता से लड़ने वाली सोनी सोरी को चुप कराने के लिए उनके चेहरे पर तेज़ाबी रासायनिक पदार्थ तक पोता गया।

तमाम मुखर आवाज़ों के बर्बर दमन के अलावा राज्यसत्ता सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिबन्धित किये गये सलवा जुडूम को ही दूसरे नामों से फिर से शुरू करने की कोशिश में है। सलवा जुडूम की ही तर्ज़ पर वहाँ 'बस्तर विकास संघर्ष समिति', 'महिला एकता मंच' और 'सामाजिक एकता मंच' जैसे कई नये समूह उभर कर आ रहे हैं। देश की सबसे भ्रष्ट राज्य सरकारों में से एक, छत्तीसगढ़ की रमन सिंह सरकार "माओवाद" से लड़ने के नाम पर अपने तमाम कुकर्मों पर पर्दा डालने में लगी है।

सर्वविदित है कि छत्तीसगढ़ के जिन इलाक़ों को सरकार नक्सल-प्रभावित बता रही है वहाँ कोयला, लौह अयस्क, बॉक्साइट जैसे खनिज प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। इन्हीं खनिजों पर देशी-विदेशी पूँजीवादी गिद्धों की नज़रें गड़ी हुई हैं और इसीलिए वहाँ के आदिवासियों को उनके जल-जंगल-ज़मीन से बेदखल करना पूँजीवाद की ज़रूरत है। आदिवासी वहाँ अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं और "माओवादी" भी उनके पक्ष से राज्यसत्ता के ज़मीन हड़पो अभियान का प्रतिरोध कर रहे हैं। मनमोहन सिंह या मोदी को देश के एक छोटे-से इलाक़े में सिमटा आन्दोलन इसीलिए "सबसे बड़ा ख़तरा" नज़र आता है क्योंकि इसके कारण उनके लुटेरे मालिकों की हवस पूरी नहीं पा रही है। देशभर में साम्प्रदायिकता की आग लगा रहे संगठनों से उन्हें आन्तरिक सुरक्षा के लिए ख़तरा नज़र नहीं आता। आज छत्तीसगढ़ में जिस तरह से हर तरह की जनपक्षधर आवाज़ को दबाया जा रहा है, वायु सेना तक के प्रयोग की तैयारियाँ चल रही हैं, उससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राज्यसत्ता की रणनीति है इन इलाक़ों को एक अँधेरे कैदख़ाने में तब्दील कर देने की, जिसकी कोई ख़बर बाहर मुख्यधारा में आ ही ना सके, और बर्बर दमन को बिना किसी अवरोध के अंजाम दिया जा सके। इराक़, सीरिया जैसे देशों की हालत पर एक सरसरी निगाह डालने से स्पष्ट हो जाता है कि हवाई हमलों में सबसे ज़्यादा अन्तत: आम जनता ही मारी जाती है और बेघर होती है। कहने को तो वायुसेना का दावा है कि वो बस "जवाबी कार्रवाई" या "आत्म-रक्षा" में माओवादियों के ख़िलाफ़ हमले करेगी पर हक़ीक़त में तो आम आदिवासी विकलांग होंगे, आम आदिवासियों के घर जलेंगे, आम आदिवासियों के बच्चे मरेंगे और अनाथ होंगे! अभी भी आये दिन पुलिस और अर्द्धसैनिक बलों द्वारा किये जाने वाले फ़र्ज़ी एनकाउंटर, अपहरण, हत्या और सामूहिक बलात्कारों का शिकार आम आदिवासी हो रहे हैं। अभी तक इनमें से जो छिटपुट घटनाएँ मीडिया में आ जाती थीं अब उन्हें भी पूरी तरह से ख़ामोश किया जा रहा है। आने वाले दिनों में दमनात्मक कार्रवाइयों की भयावहता की केवल कल्पना ही की जा सकती है।

छत्तीसगढ़ के गोपमाड़ गाँव में पुलिस के जवान इस लड़की को उठा ले गये और बलात्कार के बाद उसकी हत्या करके उसे वर्दी पहनाकर नक्सली घोषित कर दिया। पत्रकारों और सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा इस झूठ का भण्डाफोड़ होने के बाद भी अधिकारी पुलिस कर्मियों का बेशर्मी से बचाव कर रहे हैं। छत्तीसगढ़ में ऐसी घटनाएँ आम बात बन गयी हैं।

विचारधारात्मक रूप से जहाँ भाजपा और संघ के लिए अपने हिन्दुत्व के एजेंडे को बढ़ाने के लिए 'रेड ज़ोन' को ख़त्म करने की कवायदें स्वाभाविक हैं, वहीं निर्मम तानाशाही आज विश्वव्यापी मन्दी की मार झेल रहे पूँजीवाद की सख़्त ज़रूरत भी है। ऐसे में दंगों की सीढ़ियाँ चढ़कर सीएम से पीएम बनने वाले नरेन्द्र मोदी यदि भारतीय पूँजीपति वर्ग के सबसे चहेते चेहरे हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। गहराते आर्थिक संकट के दौर में पूँजीपति वर्ग अपनी परियोजनाओं में किसी भी किस्म के अवरोध झेल पाने की क्षमता नहीं रखता, और इसलिए मुनाफ़े की गिरती दर को रोकने के लिए अपनी राज्यसत्ता द्वारा आम जनता का दमन करने के अलावा उसके पास और कोई रास्ता नहीं है। असल में यही है पूँजीवाद का असली चेहरा, यही है तथाकथित देशभक्ति के मायने जिसमें पूँजीपति वर्ग के नफ़े-नुकसान के हिसाब से ही 'राष्ट्र' के हित और अहित निर्धारित किये जाते हैं और जिसमें ज़रूरत पड़ने पर अपनी ही जनता के ख़िलाफ़ युद्ध करना और उस पर बमबारी करना भी 'राष्ट्रहित' में होता है।

– शिशिर

किसानों-खेत मज़दूरों की बढ़ती आत्महत्याएँ और कर्ज़ की समस्या

(पेज 8 से आगे)

किसानों और खेत मज़दूरों की ख़ुदकुशी की घटनाएँ आज पंजाब में और पूरे देश में एक गम्भीर समस्या बनी हुई हैं। लेकिन इसका स्थायी हल एक ही है, और वह है पैदावार के साधनों के निजी मालिकाने को ख़त्म करके इसको समाज की सांझी मिल्कियत बनाना, जिससे पैदावार मुनाफ़े के लिए ना हो बल्कि समाज की ज़रूरतों की पूर्ति के लिए हो। ऐसी व्यवस्था में मण्डी के लिए पैदावार कर रहे अलग-अलग किसानों की जगह पूरा समाज मिलकर अपनी ज़रूरतों के लिए पैदा करेगा जिससे ना किसी को उजड़ने का डर हो और ना ही कर्ज़दार होने का। यह काम कोई भी पूँजीवादी पार्टी नहीं करेगी। यह काम मज़दूर वर्ग की पार्टी की अगुवाई में समाजवादी इंक़लाब होने के बाद ही हो सकता है। इसलिए ग़रीब और मझोली किसानी का भविष्य मज़दूर वर्ग के इंक़लाबी आन्दोलन के साथ ख़ुद को जोड़ने में ही है।

— गुरप्रीत

किसान आत्महत्याओं पर मंत्रियों की बयानबाज़ी

- "सभी किसान आत्महत्याएँ बेरोज़गारी या भुखमरी के कारण होती हैं। यह तो फैशन बन गया है। रिवाज़ बन गया है।" – महाराष्ट्र में किसान आत्महत्याओं के बारे भाजपा सांसद गोपाल शेट्टी,18 फरवरी, 2016
- "भारतीय क़ानून के अनुसार ख़ुदकुशी जुर्म है। जो व्यक्ति ख़ुदकुशी करता है, वह अपनी ज़िम्मेवारी से भागता है। ऐसे लोग बुज़दिल हैं और सरकार को ऐसे बुज़दिलों और मुजरिमों का साथ नहीं देना चाहिए।" – किसान ख़ुदकुशियों के बारे ओम प्रकाश धनकड़, हरियाणा में भाजपा सरकार का कृषि मंत्री, 29 अप्रैल, 2015
- "किसान अपनी ज़िम्मेदारी ख़ुद उठायें। अगर फसलें खराब हो जायें तो वह देखें कि क्या करना है। अगर वह मरते हैं तो मरने दो। जो खेती कर सकते हैं वो करें बाकी नहीं।" – संजय ढोकरा, महाराष्ट्र से भाजपा का सांसद, 31 दिसंबर, 2014
- "कोई भी फसल ख़राब होने के कारण ख़ुदकुशी नहीं कर सकता। मध्य प्रदेश में किसान निजी कारणों से ख़ुदकुशी कर रहे हैं।" – कैलाश विजयवर्गीय, भाजपा का राष्ट्रीय महासचिव, 8 अप्रैल, 2015
- "किसानों की ख़ुदकुशी के पीछे पारिवारिक समस्याएँ, बीमारी, नशा, दहेज़, प्रेम सम्बन्ध और नपुंसकता जैसे कारण हैं।" – राधामोहन सिंह, मोदी सरकार में केन्द्रीय कृषि मंत्री, जुलाई 2015
- "अगर किसान अपने मोबाइलों के बिल भर सकते हैं तो बिजली के क्यों नहीं? उनको बिल के कर्ज़े उतारने की आदत डाल लेनी चाहिए।" – एकनाथ खडसे, महाराष्ट्र में भाजपा का कृषि मंत्री, 24 नवंबर, 2014

सभी मोर्चों पर नाकाम मोदी सरकार और संघ परिवार पूरी बेशर्मी से नफ़रत की खेती में जुट चुके हैं!

(पेज 1 से आगे)

पहले से लगे हुए कारख़ाने ही केवल 70 प्रतिशत क्षमता पर चल रहे हैं, नये लगने का सवाल ही नहीं। सरकारी नौकरियों में किस्तों में और गुपचुप कटौती जारी है। मज़दूरी बढ़ नहीं रही, पर महँगाई बेहिसाब बढ़ती जा रही है। मनरेगा से लेकर तमाम कल्याणकारी योजनाओं में कटौती करके पूँजीपतियों को भारी छूटें और तोहफ़े दिये जा रहे हैं, शिक्षा, स्वास्थ्य, मकान सब आम लोगों की पहुँच से दूर होते जा रहे हैं। मज़दूर, किसान, कर्मचारी, छात्र, नौजवान, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी, महिलाएँ – सब तंगहाल हैं और आवाज़ उठाने पर पीटे जा रहे हैं, दमन के शिकार बनाये जा रहे हैं।

मौजूदा हालात पहले से गुणात्मक तौर पर भिन्न हैं। आज हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों की ताकत बहुत अधिक बढ़ चुकी है। आज देश में इनके द्वारा बड़े स्तर पर अल्पसंख्यकों के खिलाफ़ नफ़रत का वातावरण बना दिया गया है। गौहत्या, धर्म परिवर्तन, लव जिहाद, हिन्दु धर्म की रक्षा आदि अनेकों बहानों तले अल्प संख्यकों खासकर मुस्लमानों व ईसाइयों को निशाना बनाया जा रहा है। हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों द्वारा दलितों पर दमन बहुत बढ़ गया है। साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ़ आवाज़ उठाने वालों साहित्यकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं आदि को जान से मारने की धमकियाँ दी जा रही हैं, जानलेवा हमले हो रहे हैं, गुलाम अली जैसे गायकों को भारत में कार्यक्रम करने से रोका जा रहा है। हर दिन अनेकों साम्प्रदायिक कार्रवाइयाँ हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों द्वारा अंजाम दी जा रही हैं।

लुटेरे पूँजीपति वर्ग की सेवा में हिटलर-मुसोलनी की तर्ज पर भारत में फासीवादी सत्ता कायम करने करके जनता के सारे जनवादी अधिकार छीनने का सपना देखने वाली आर.एस.एस. की सदस्यता पिछले पाँच सालों में बहुत तेज़ी से बढ़ी है। अगस्त 2015 की एक रिपोर्ट के मुताबिक पिछले पाँच सालों में इसकी देश के कोने-कोने में लगने वाली शाखाओं की संख्या में 61 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। देश में रोज़ाना इसकी 51335 शाखाएँ लगती हैं। आर.एस.एस. से सम्बन्धित करीब 40 संगठनों का आधार तेज़ी से बढ़ा है। इसका राजनीतिक विंग भारतीय जनता पार्टी मुस्लमानों के गुजरात-2002 नरसंहार के कमाण्डर नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में केन्द्र में भारी बहुमत से सरकार बनाने में कामयाब हुआ है। केन्द्र में मोदी सरकार बनने के बाद संघ परिवार (आर.एस.एस. व इससे सम्बन्धित संगठनों जैसे भाजपा, बजरंग दल, ए.बी.वी.पी., सेवा भारती आदि) के फैलाम में और भी तेज़ी आई है।

संघ परिवार की इस बढ़ी सामाजिक-राजनीतिक ताकत के मुताबिक इसके काले कारनामों में भी वृद्धि हुई है। पिछले पाँच वर्षों में संघ परिवार की ताकत में तेज़ वृद्धि के साथ ही साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं में भी तेज़ वृद्धि हुई है। देश भर में साम्प्रदायिक नफ़रत फैला कर भाजपा द्वारा केन्द्र सरकार पर कबजे के अगले दो महीनों में ही साम्प्रदायिक हिन्सा की 600 घटनाएँ घटित हो गई थीं। हिन्दु धर्म की रक्षा, गौरक्षा, तथाकथित लव जेहाद का विरोध, धर्म परिवर्तन विरोध आदि बहानों तले पिछले दो वर्ष में साम्प्रदायिक हिंसा का माहौल निरन्तर बढ़ता गया है। संघ परिवार ही नहीं बल्कि इसे सीधे या परोक्ष ढंग से जुड़े अनेकों हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी संगठन-ग्रुप साम्प्रदायिक नफ़रत फैला रहे हैं और हिंसा की घटनाओं को अंजाम दे रहै हैं। विभिन्न पार्टियों की सरकारें व पुलिस प्रशासन इनके खिलाफ़ कार्रवाई करने की बजाए इनका साथ देते हैं। भारत में धार्मिक अल्पसंख्यकों खासकर मुस्लमानों और ईसाइयों को बेहद भय के माहौल में दिन काटने पड़ रहे हैं। खान-पान, रहन-सहन, त्यौहारों, रीति-रिवाजों सम्बन्धी उनके मन में व्यापक पैमाने पर डर फैला है। भाजपा की केन्द्र व अन्य राज्य सरकारें हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों को हवा दे रही हैं। इसके विभिन्न केन्द्रीय मंत्रियों, मुख्य मंत्रियों, सांसदों, विधायकों व अन्य नेताओं द्वारा मुसलमानों के खिलाफ़ भड़काऊ बयान लगातार आ रहे हैं। नरेन्द्र मोदी साम्प्रदायिकता के विषय पर कम ही बोलते हैं। उनकी चुप्पी और कभी कभी दिए जाने वाले गोल-मोल ब्यानों से हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथियों को स्पष्ट संदेश जाता है कि वे अपने काले कामों में जोर-शोर से लगे रहें, कि उनकी खिलाफ़ कार्रवाई करने का सरकार का कोई इरादा नहीं है। सन् 2002 में गुजरात में मुख्यमंत्री रहने के दौरान मुस्लमानों के कत्लेआम की कमान सम्भालने वाले मोदी से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है?

हमें भूलना नहीं चाहिए कि देश में इस समय जो लोग देशभक्ति और राष्ट्रभक्ति के ठेकेदार बने हुए हैं, ये वही लोग हैं जिन्होंने आज़ादी की लड़ाई में कोई हिस्सा नहीं लिया था! ये वही लोग हैं जिन्होंने अमर शहीद भगतसिंह और उन जैसे तमा अनेक आज़ादी के मतवालों के ख़िलाफ़ अंग्रेज़ों के लिए मुखबिरी की थी! सत्ताधारी पार्टी और संघ परिवार के ये लोग आज देश को धर्म और जाति के नाम पर तोड़ रहे हैं और साम्प्रदायिकता की लहर पर सवार होकर सत्ता में पहुँच गये हैं। इन्होंने देशभक्ति को सरकार-भक्ति से जोड़ दिया है। जो भी सरकार से अलग सोचता है, उसकी नीति की आलोचना करता है, जो भी अपने हक़ के लिए आवाज़ उठाता है उसे तुरन्त ही देशद्रोही और राष्ट्रद्रोही घोषित कर दिया जाता है। अम्बानियों और अदानियों के टुकड़ों पर पलने वाला कारपोरेट मीडिया भी इन तथाकथित ''देशभक्तों'' के सुर में सुर मिलाता है और अपने स्टूडियो में ही मुकदमा चलाकर फैसला सुना डालता है!

नकली देशभक्ति के इस गुबार में आम मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी के ज़रूरी मुद्दों को ढँक देने की कोशिश की जा रही है। दाल, सब्ज़ी, दवाएँ, शिक्षा, तेल, गैस, किराया-भाड़ा, हर चीज़ की कीमतें आसमान छू रही हैं और ग़रीबों तथा निम्न मध्यवर्ग के लोगों का जीना मुहाल हो गया है। 'विकास' के लम्बे-चौड़े दावों में से कोई भी पूरा होना तो दूर की बात है, पिछले दो साल में खाने-पीने, दवा-इलाज और शिक्षा जैसी बुनियादी चीज़ों में बेतहाशा महँगाई, मनरेगा और विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं में भारी कटौती से आम लोग बुरी तरह तंग हैं। मज़दूरों के रहे-सहे अधिकारों पर डाका डालने के लिए मोदी सरकार संसद में कई क़ानून पास करवाने की तैयारी कर रही है। दूसरी ओर, अम्बानी, अदानी, बिड़ला, टाटा जैसे अपने आकाओं को मोदी सरकार एक के बाद एक तोहफ़े दे रही है! तमाम करों से छूट, लगभग मुफ़्त बिजली, पानी, ज़मीन, ब्याजरहित कर्ज़ और मज़दूरों को मनमाफिक ढंग से लूटने की छूट दी जा रही है। देश की प्राकृतिक सम्पदा और जनता के पैसे से खड़े किये सार्वजनिक उद्योगों को औने-पौने दामों पर उन्हें सौंपा जा रहा है। 'स्वदेशी', 'देशभक्ति', 'राष्ट्रवाद' का ढोल बजाते हुए सत्ता में आये मोदी ने अपनी सरकार बनने के साथ ही बीमा, रक्षा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों समेत तमाम क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को इजाज़त दे दी है। 'मेक इन इण्डिया' के सारे शोर-शराबे का अर्थ यही है कि 'आओ दुनिया भर के मालिको, पूँजीपतियो और व्यापारियो! हमारे देश के सस्ते श्रम और प्राकृतिक संसाधनों को बेरोक-टोक जमकर लूटो!'

अगर हम आज ही हिटलर के इन अनुयायियों की असलियत नहीं पहचानते और इनके ख़िलाफ़ आवाज़ नहीं उठाते तो कल बहुत देर हो जायेगी। हर ज़ुबान पर ताला लग जायेगा। देश में महँगाई, बेरोज़गारी और ग़रीबी का जो आलम है, ज़ाहिर है हममें से हर उस इंसान को कल अपने हक़ की आवाज़ उठानी पड़ेगी जो मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर पैदा नहीं हुआ है। ऐसे में हर किसी को ये सरकार और उसके संरक्षण में काम करने वाली गुण्डावाहिनियाँ "देशद्रोही" घोषित कर देंगी! हमें इनकी असलियत को जनता के सामने नंगा करना होगा। शहरों की कॉलोनियों, बस्तियों से लेकर कैम्पसों और शैक्षणिक संस्थानों में हमें इन्हें बेनक़ाब करना होगा। गाँव-गाँव, कस्बे-कस्बे में इनकी पोल खोलनी होगी।

फासिस्टों के विरुद्ध धुआँधार प्रचार और इस संघर्ष में मेहनतकश जनता के नौजवानों की भरती के साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि फासिस्ट शक्तियों ने आज राज्यसत्ता पर कब्ज़ा करने के साथ ही, समाज में विभिन्न रूपों में अपनी पैठ बना रखी है। इनसे मुकाबले के लिए हमें वैकल्पिक शिक्षा, प्रचार और संस्कृति का अपना तंत्र विकसित करना होगा, मज़दूर वर्ग को राजनीतिक स्तर पर शिक्षित-संगठित करना होगा और मध्य वर्ग के रैडिकल तत्वों को उनके साथ खड़ा करना होगा। संगठित क्रान्तिकारी कैडर शक्ति की मदद से हमें भी अपनी खन्दकें खोदकर और बंकर बनाकर पूँजी और श्रम की ताक़तों के बीच मोर्चा बाँधकर चलने वाले लम्बे वर्गयुद्ध में पूँजी के भाड़े के गुण्डे फासिस्टों से मोर्चा लेना होगा।

विकलांगों के आये "अच्छे दिन", "रामराज्य" में विकलांगों की पुलिस कर रही पिटाई!

हाल ही में एक भाजपाई मंत्री ने कहा कि प्रधानमंत्री मोदी में देवता का अंश है! यानी कि वे "दिव्यांश" हैं। और इन्हीं "दिव्यांश" प्रधानमंत्री की पार्टी की सरकार के नीचे काम करने वाली जयपुर पुलिस ने दिव्यांगों की पिटाई की! "रामराज्य" में "दिव्यांश" प्रधानमंत्री की पार्टी के लोग दिव्यांगों को पिटवा रहे हैं! पिछली 23 मई से विकलांग आन्दोलन 2016 के बैनर तले राजस्थान की राजधानी जयपुर में विशेष योग्यजन अपनी माँगों को लेकर आन्दोलनरत हैं। भाजपा सरकार ने राजस्थान में सत्ता में आते ही विशेष योग्यजनों को मिलने वाली सुविधाओं में कटौती कर दी थी जैसे कि आस्था कार्ड के तहत मिलने वाला 25 किलो गेहूँ बन्द कर दिया गया था। भाजपाई "रामराज्य" में सरकार के ऐसे तुग़लक़ी फ़रमानों की गर्म आँच से झुलसते विकलांगों ने सरकार के ऐसे ग़लत फ़ैसलों के विरोध में आन्दोलन करने व अपनी माँगों का ज्ञापन सरकार को देने का प्रयास किया। राजस्थान के महिला एवं बाल विकास मंत्री ने तो आन्दोलनकारियों से मिलने तक से इंकार कर दिया। उनके इस असंवेदनशील व्यवहार का विरोध करने पर पुलिस ने एक विकलांग व्यक्ति को थप्पड़ जड़ दिया। इसके पहले आन्दोलन की शुरुआत में पुलिस ने आन्दोलनकारियों पर बर्बर लाठीचार्ज किया गया व एक महिला आन्दोलनकारी की तिपहिया साइकिल तोड़ दी।

आन्दोलनकारियों की प्रमुख माँग है कि सरकार उनको रोज़गार दे व फरवरी 1996 से बैकलॉग वाले पदों को विशेष भर्ती अभियान चलाकर पूरा करे। यही वादा भाजपा ने अपने चुनावी घोषणापत्र में भी किया था पर अब सरकार इसे लागू करने में टालमटोल कर रही है। उनकी दूसरी माँग है कि विकलांग व्यक्तियों को देय मासिक पेंशन 500 से बढ़ाकर 1500 रुपये की जाये। कई अन्य राज्यों में पेंशन राशि 2000 तक है। इस पर राजस्थान सरकार के मंत्री का कहना था कि मध्यप्रदेश व गुजरात में तो विकलांग पेशन मात्र 400 रुपये है, हम तो 100 रुपये ज़्यादा दे रहे हैं। यही है भाजपा शासित राज्यों के "विकास का मॉडल"! आन्दोलनकारियों का कहना है कि विशेष योग्यजनों के लिये हर जिले में हॉस्टल खोला जाये ताकि बाहर जाकर लिखने-पढ़ने वाले छात्रों को आवास की समस्या का सामना ना करना पड़े, साथ ही रोस्टर प्रणाली को ठीक से लागू करते हुये ठेके पर रखे गये कर्मचारियों को स्थायी किया जाये। विकलांग आन्दोलन 2016 के सदस्यों ने अपना 21 सूत्री माँगपत्रक सरकार को सौंपा। 30 मई की बातचीत में सरकार ने आन्दोलनकारियों की माँगों के सम्बन्ध में गोलमोल बात करते हुए कमेटी गठित करने का कोरा आश्वासन दिया पर आन्दोलनकारियों का कहना था कि सरकार उनकी जायज़ माँगों पर तुरन्त कार्रवाई करे। कांग्रेस शासन के दौरान जनता कई बार गठित ऐसी कमेटियों का हश्र देख चुकी है। विकलांग जन ये जानना चाहते थे कि भाजपा सरकार टालमटोल क्यों कर रही है जबकि इनमें से कुछ माँगें तो ख़ुद भाजपा के चुनावी घोषणापत्र में मौजूद हैं? अब राज्य सरकार बहाना बनाते हुए कह रही है कि ये माँगें मानने का अधिकार केन्द्र सरकार के पास है और "दिव्यांश" मोदी की केन्द्र सरकार के मंत्रीगण कह रहे हैं कि ये ज़िम्मेदारी राज्य सरकार की है! इस तरह केंद्र व राज्य सरकार दोनों वाजिब माँगों पर टालमटोल कर रही हैं। हाल ही में वसुन्धरा सरकार ने अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ते हुए उल्टा आन्दोलनकारियों पर ही आरोप जड़ दिया कि वे गुमराह होकर "राजनीति" कर रहे हैं! पर सवाल यह है कि जब ख़ुद भाजपा ने अपने चुनावी घोषणापत्र में विकलांग जनों को रोज़गार देने की बात की थी, सुशासन व विकास की बात की थी, तब ख़ुद भाजपा क्या गुमराह होकर "राजनीति" कर रही थी?

– मुनीश

मार्क्स की 'पूँजी' को जानिये : चित्रांकनों के साथ

(चौथी किस्त)

अमेरिका की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य एवं प्रसिद्ध राजनीतिक चित्रकार ह्यूगो गेलर्ट ने 1934 में मार्क्स की 'पूँजी' के आधार पर एक पुस्तक 'कार्ल मार्क्सेज़ कैपिटल इन लिथोग्राफ़्स' लिखी थी जिसमें 'पूँजी' में दी गयी प्रमुख अवधारणाओं को चित्रों के ज़रिये समझाया गया था। गेलर्ट के ही शब्दों में इस पुस्तक में ''...मूल पाठ के सबसे महत्वपूर्ण अंश ही दिये गये हैं। लेकिन मार्क्सवाद की बुनियादी समझ के लिए आवश्यक सामग्री चित्रांकनों की मदद से डाली गयी है।'' 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के लिए इस शानदार कृति के चुनिन्दा अंशों को एक श्रृंखला के रूप में दिया जा रहा है। — सम्पादक

माल: माल के दो कारक उपयोग मूल्य और मूल्य (मूल्य का सारतत्व, मूल्य का परिमाण)

जिन समाजों में उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति व्याप्त होती है, उनकी सम्पदा ''मालों के विशाल संचय'' का रूप लेती है, जिसमें एक-एक माल उसकी बुनियादी इकाई होता है...

माल मुख्यत: एक बाह्य वस्तु होती है, एक ऐसी वस्तु जिसके गुण उसे किसी न किसी प्रकार से किसी मानवीय आवश्यकता की पूर्ति करने में सक्षम बनाते हैं। इन आवश्यकताओं का स्वरूप क्या है, उदाहरण के लिए वे पेट से पैदा हुई हैं या कल्पना से, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता...

हर उपयोगी वस्तु, जैसे कि लोहा, कागज़ आदि, को दोहरे दृष्टिकोण से देखना चाहिए, उसकी गुणवत्ता के दृष्टिकोण से और उसकी मात्रा के दृष्टिकोण से....

किसी चीज़ की उपयोगिता उसे उपयोग-मूल्य प्रदान करती है। परन्तु यह उपयोगिता अपने आप में उससे कोई अलग चीज़ नहीं है। माल के गुणों से निर्धारित होने के नाते उनके बाहर उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। इसलिए माल अपने आप में, जैसे लोहा, गेहूँ, हीरा आदि, उपयोग-मूल्य या वस्तु है...उपयोग-मूल्य केवल उपयोग या उपभोग के द्वारा ही वास्तविकता बनता है। उपयोग-मूल्य सम्पदा का सारतत्व होते हैं, उसका सामाजिक स्वरूप चाहे जो भी हो। इसी तरह से, जिस प्रकार के समाज की हम पड़ताल करने जा रहे हैं, उसमें वे विनिमय-मूल्य के भौतिक आधान होते हैं।

विनिमय-मूल्य अपने आपको मुख्यत: एक परिमाणात्मक अनुपात में व्यक्त करता है, एक ऐसा अनुपात जिसमें एक प्रकार के उपयोग-मूल्य की दूसरे प्रकार के उपयोग-मूल्य से अदला-बदली की जाती है, एक ऐसा अनुपात जो दिक् और काल के अनुसार लगातार बदलता रहता है। अत: विनिमय-मूल्य आकस्मिक ओर पूरी तरह से सापेक्ष प्रतीत होता है, और नतीजतन मालों में अन्तर्निहित विनिमय-मूल्य (अन्तर्निहित मूल्य) जैसा शब्द विरोधाभासी है...

मालों के बीच के विनिमय अनुपात की स्पष्ट अभिलाक्षणिकता ठीक यही है कि उनके उपयोग-मूल्य पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से एक उपयोग-मूल्य किसी दूसरे उपयोग मूल्य जैसा ही मूल्यवान है, बशर्ते वह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो... सौ पाउण्ड की क़ीमत का सीसा या लोहा उतना ही मूल्यवान है जितना कि सौ पाउण्ड की क़ीमत का चाँदी और सोना। उपयोग-मूल्य के रूप में देखने पर माल सबसे पहले अलग-अलग गुणवत्ता वाले होते हैं; जबकि विनिमय-मूल्य के रूप में देखने पर वे केवल परिमाण में अलग हो सकते हैं, क्योंकि इस दृष्टिकोण से उनका कोई उपयोग-मूल्य नहीं है।

मालों के उपयोग मूल्य पर ध्यान न देने पर केवल एक चीज़ ऐसी बचती है जो उन सबमें साझा है, वह यह कि वे सभी श्रम के उत्पाद हैं।

लेकिन श्रम का उत्पाद भी हमारे हाथ में आकर बदल चुका है। यदि अमूर्तन की प्रक्रिया द्वारा हम इसके उपयोग-मूल्य को नज़रअन्दाज़ कर दें, यदि उन भौतिक संघटकों और स्वरूपों को भी नज़रअन्दाज़ कर दें, हमारे लिए कोई मेज़, या घर, या सूत, या अन्य कोई उपयोगी चीज़ नहीं है। उन सभी गुणों को निरस्त कर दें जिनके द्वारा यह हमारी इन्द्रियों पर असर डालती है। ऐसी स्थिति में यह एक बढ़ई के, राजमिस्त्री के या कताई करने वाले के काम का उत्पाद या किसी विशिष्ट श्रम का नतीजा नहीं रह जाते। जब श्रम उत्पादों का उपयोगी चरित्र विलुप्त हो जाता है, तो उनमें निहित श्रम का उपयोगी चरित्र भी विलुप्त हो जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि उस श्रम के विभिन्न ठोस रूप भी ग़ायब हो जाते हैं; अब वे एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते; वे सभी एक ही तरह के मानवीय श्रम में बदल जाते हैं—अमूर्त मानवीय श्रम।

आइये अब इस पर विचार करें कि श्रम के उत्पादों में से क्या चीज़ बची रह गयी। उनमें से कुछ भी नहीं बचा रह गया, सिवाय उपरोक्त अमूर्त चीज़ के, महज़ अविभेदीकृत मानवीय श्रम के जमाव के, यानी मानवीय श्रम की ख़पत, इस ख़पत का तरीका क्या है, यह चीज़ मायने नहीं रखती।

अब जो चीज़ मायने रखती है वह यह कि उनके उत्पादन में मानवीय श्रम शक्ति की ख़पत हुई है, कि मानव श्रम उनमें संचित है। इस सामाजिक सारतत्व के क्रिस्टल के रूप में वे मूल्य हैं—मालों के मूल्य।

उपयोग मूल्य और मूल्य (मूल्य का सारतत्व, मूल्य का परिमाण)

मालों के विनिमय के अनुपात में हमें उनके विनिमय-मूल्य उनके उपयोग मूल्यों से सर्वथा स्वतंत्र प्रतीत हुए थे। श्रम उत्पादों के उपयोग-मूल्य को नज़रअन्दाज़ करके हम उनके मूल्य के बारे में उपरोक्त परिभाषित सन्दर्भ तक पहुँचे थे। मालों के विनिमय-अनुपात या विनिमय-मूल्य में पाया गया साझा तत्व वास्तव में उनका मूल्य होता है। हमारी पड़ताल आगे यह दिखायेगी कि विनिमय-मूल्य, मूल्य का आवश्यक प्रतीयमान रूप है, यानी वह एकमात्र रूप जिसमें मूल्य को अभिव्यक्त किया जा सकता है। परन्तु अभी के लिए हमें मूल्य को उसकी अभिव्यक्ति की प्रणाली से स्वतंत्र ही विचार करना होगा।

उपयोग-मूल्य या किसी वस्तु (उपयोगी वस्तु) का कोई मूल्य सिर्फ़ इसीलिए है क्योंकि उसमें अमूर्त श्रम निहित है अथवा उसने भौतिक रूप धारण किया है। इस मूल्य को हम कैसे माप सकते हैं? उसमें निहित ''मूल्य पैदा करने वाली'' की मात्रा के रूप में—श्रम की मात्रा के रूप में। यह स्वयं अपनी अवधि से मापी जाती है; और श्रम-काल को घंटों, दिनों आदि से माप जाता है।

अब यदि किसी माल का मूल्य उसके उत्पादन में लगे श्रम की मात्रा से तय होता है तो प्रथम दृष्टया यह प्रतीत हो सकता है कि यदि उसको बनाने वाला श्रमिक आलसी अथवा कम हुनरमन्द होगा तो उसका मूल्य अधिक होगा, क्योंकि आलस्य या फिर हुनर की कमी निश्चय ही उत्पादन में लगे समय को बढ़ा देगी। परन्तु वह श्रम जिसने मूल्य का सारतत्व पैदा किया वह समांग मानव श्रम है, यानी एकसमान श्रमशक्ति की ख़पत।

इसलिए, ऐसे मालों के मूल्य का परिमाण एक ही होगा जिनमें बराबर मात्रा में श्रम निहित होता है, अथवा जिन्हें बराबर श्रमकाल में उत्पादित किया जा सकता है। दो मालों के मूल्यों का अनुपात उनके उत्पादन में लगे आवश्यक श्रमकाल के बराबर होता है।

''मूल्य के रूप में माल घनीभूत श्रमकाल के ही विशिष्ट पिण्ड हैं।''

इस प्रकार यदि किसी माल के उत्पादन में लगा श्रमकाल स्थिर है तो उसके मूल्य का परिमाण भी स्थिर रहेगा। परन्तु मालों के उत्पादन में लगने वाला श्रमकाल श्रम की उत्पादकता में आये हर बदलाव के साथ बदलेगा। श्रम की उत्पादकता विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार तय होती है , जिनमें श्रमिक की औसत कुशलता, वैज्ञानिक सिद्धान्त का विकास, किस हद तक यह सिद्धान्त व्यवहार में लागू किया गया है, उत्पादन का सामाजिक संगठन, उत्पादन के साधनों की आपूर्ति और उनकी कार्यकुशलता, एवं कुछ भौतिक परिस्थितियाँ। उदाहरण के लिए श्रम की एक निश्चित मात्रा अनुकूल मौसम में आठ बुशेल गेहूँ के द्वारा प्रदर्शित की जा सकती है, जबकि प्रतिकूल मौसम में चार....

यह सम्भव है कि किसी वस्तु में मूल्य न हो, लेकिन फिर भी उसमें उपयोग-मूल्य हो। ऐसा तब होता है जब मानवता के लिए उसकी उपयोगिता श्रम का नतीजा न हो। उदाहरण के लिए: वायु, अछूती धरती, प्रायरी, आदिकालीन जंगल इत्यादि। ऐसी भी कोई चीज़ हो सकती है जो उपयोगी भी हो और मानव श्रम का उत्पाद भी हो, लेकिन फिर भी वह माल न हो। यदि कोई व्यक्ति अपने ख़ुद के श्रम के उत्पादों से अपनी आवश्यकता की पूर्ति करता है, तो वह उपयोग-मूल्य पैदा करता है लेकिन माल नहीं।

माल पैदा करने के लिए उसे महज़ उपयोग-मूल्य ही नहीं बल्कि दूसरों के लिए उपयोग मूल्य – सामाजिक उपयोग-मूल्य – पैदा करना होगा। (और केवल ''दूसरों के लिए'' पैदा करना ही पर्याप्त नहीं है। मध्यकालीन किसान अपने सामन्ती स्वामी के लिए और पादरी की दक्षिणा के लिए अनाज का उत्पादन करता था; लेकिन यह तथ्य कि वे दूसरों के लिए उत्पादित किये गये थे, अपने आप में अनाज को माल नहीं बना देता। माल होने के लिए किसी उत्पाद को विनिमय के ज़रिये दूसरे ऐसे व्यक्ति के हाथों में पहुँचना चाहिए जिसके लिए इसका उपयोग-मूल्य हो।)

अन्त में ऐसी किसी चीज़ में मूल्य नहीं हो सकता जिसकी कोई उपयोगिता ही न हो। यदि वह बेकार है तो उसमें निहित श्रम भी बेकार होगा; ऐसे श्रम की गणना श्रम के रूप में नहीं की जा सकती, और इसलिए वह कोई मूल्य पैदा नहीं कर सकती।

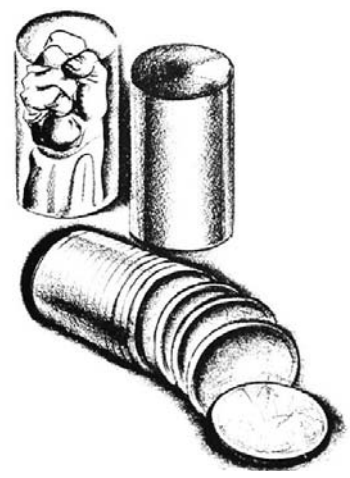

माल: माल विनिमय के अन्धभक्तिनुमा चरित्र का रहस्य

... इस प्रकार श्रमकाल के द्वारा मूल्य के परिमाण का निर्धारण एक ऐसा रहस्य है जो मालों के सापेक्षिक मूल्यों के प्रत्यक्ष उतार-चढ़ाव के नीचे छिप जाता है।

... जब मैं यह कहता हूँ कि कोट या जूता या कोई अन्य चीज़ कपड़े से इस रूप में सम्बन्धित है कि वे सभी अमूर्त मानवीय श्रम के सामान्य मूर्त रूप हैं, तो यह बयान प्रत्यक्षत: बेतुका लगता है। फिर भी जब कोटों, जूतों, आदि के उत्पादक इन मालों को कपड़े के रूप में एक सामान्य समतुल्य (या फिर सामान्य समतुल्य के रूप में सोना या चाँदी के साथ) के साथ लाते हैं तो उनके निजी श्रम और समाज के सामूहिक श्रम के बीच का सम्बन्ध उनको ठीक इसी बेतुके रूप में उजागर होता है....

... केवल ऐसी ही चीज़ मूल्य का उपयुक्त प्रतीयमान रूप अथवा अमूर्त और इसलिए एकसमान मानव श्रम का मूर्त रूप हो सकती है जिसके हरेक नमूने के एक ही और एकसमान गुण हों। दूसरी ओर, चूँकि मूल्य के परिमाणों के बीच अन्तर पूरी तरह से मात्रात्मक है, ऐसा माल जिसे मुद्रा के रूप में काम करना है, उसे केवल मात्रात्मक बदलावों के प्रति ग्रहणशील होना होगा, यानी उसे इच्छानुसार आसानी से विभाजित किया जा सकता हो, और उसके बावजूद उसे उन हिस्सों का इस्तेमाल करके फिर से निर्मित किया जा सकता हो जिनमें वह विभाजित किया गया था। ये वो गुण हैं जो सोने और चाँदी की प्राकृतिक अभिलाक्षणिकता है। जिस माल का उपयोग मुद्रा के रूप में किया जाता है उसके दो प्रकार के उपयोग मूल्य होते हैं। एक माल के रूप में इसके विशिष्ट उपयोग-मूल्य (उदाहरण के लिए सोने का इस्तेमाल दाँत को भरने में, विलासिता के समानों के लिए कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल इत्यादि) के अतिरिक्त यह एक औपचारिक उपयोग-मूल्य ग्रहण करता है जो उसके विशिष्ट सामाजिक प्रकार्यों से उत्पन्न होता है।

...जब हम जानते हैं कि सोना मुद्रा है, और इसलिए अन्य मालों के बदले में इसका विनिमय किया जा सकता है, तो इसमें यह ज्ञान निहित नहीं होता कि सोने का मूल्य क्या होगा, मसलन 10 पौंड सोने का। किसी भी अन्य माल की तरह सोना अपने मूल्य के परिमाण को अन्य मालों के सापेक्षिक रूप में ही व्यक्त कर सकता है। इसका ख़ुद का मूल्य इसके उत्पादन में लगे श्रम की मात्रा पर निर्भर करता है, और वह मूल्य ऐसे किसी अन्य माल की मात्रा में व्यक्त होता है जिसमें उसी मात्रा में श्रमकाल घनीभूत हुआ हो।

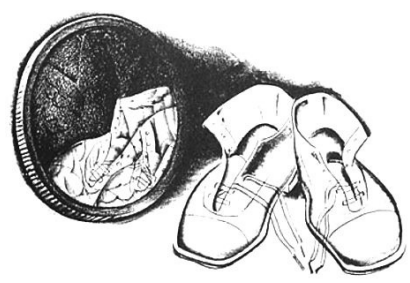

मुद्रा, अथवा मालों का परिचलन

... जो चीज़ मालों को आनुपातिक बनाती है वह मुद्रा नहीं है। बल्कि सत्य इसके ठीक उलट है। चूँकि सभी माल, जहाँ तक कि वे मूल्य हैं, मानवीय श्रम के मूर्त रूप हैं, और इसलिए आनुपातिक हैं, इसलिए उन सभी के मूल्य किसी एक विशिष्ट माल के रूप में मापे जा सकते हैं; और इस विशिष्ट माल को इसलिए उनके मूल्यों के साझा मापक, यानी मुद्रा के रूप में तब्दील किया जा सकता है। मूल्य के रूप में मुद्रा मूल्य के अन्तर्निहित मापन का आवश्यक प्रतीयमान रूप, यानी श्रमकाल है...

मुद्रा दो बिल्कुल अलग कामों को अंजाम देती है:

(पेज 12 पर जारी)

मार्क्स की 'पूँजी' को जानिये : चित्रांकनों के साथ

(पेज 11 से आगे)7 पर जारी)

मूल्य के मापक के तौर पर और क़ीमतों के मानक के तौर पर। यह मूल्य का मापक है, क्योंकि यह मानवीय श्रम का सामाजिक अवतार है; यह क़ीमत का मानक तब तक है तब तक यह धातु के तयशुदा वजन के रूप में विद्यमान है। मूल्य के पैमाने के रूप में यह तमाम मालों के मूल्यों को क़ीमतों में, या यूँ कहें कि सोने की काल्पनिक मात्राओं में तब्दील करने का काम करती है; क़ीमतों के मानक के रूप में यह सोने की इन मात्राओं को मापती है।

मूल्यों का मापक मूल्यों के रूप में मान्य मालों को मापता है; इसके उलट क़ीमतों का मानक सोने की मात्राओं को सोने की इकाई मात्रा के ज़रिये मापता है, यदि सोने को क़ीमतों के मानक के रूप में काम करना है, तो सोने के किसी निश्चित वजन को एक इकाई के रूप में तय करना होगा। यहाँ चूँकि एक ही मूल्यवर्ग वाली मात्राओं को मापा जाता है, इसलिए मापन की किसी अपरिवर्तनशील इकाई का होना बेहद महत्वपूर्ण हो जाता है। नतीजतन जब तक सोने की एक निश्चित मात्रा मापन की इकाई का काम कर सकती है, तब तक क़ीमतों का मानक अपने काम को अंजाम देगा।

परन्तु सोना मूल्यों के मापन का काम सिर्फ़ इसलिए कर सकता है क्योंकि वह स्वयं श्रम का उत्पाद है, और इसलिए मूल्य में संभावित रूप से परिवर्तनशील है....

किसी वस्तु की क़ीमत उस वस्तु में निहित मूल्य का मुद्रा रूपी नाम है।

...जो चीज़ें अपने आप में माल नहीं होतीं, जैसे कि अन्तरात्मा, इज़्ज़त, आदि, उन्हें उनके स्वामियों द्वारा बेचने के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है, और इसलिए अपनी क़ीमत के ज़रिये वे माल का रूप ले लेती हैं। अत: किसी चीज़ का मूल्य हुए बिना भी उसकी क़ीमत हो सकती है। ऐसे मामले में क़ीमत की अभिव्यक्ति काल्पनिक होती है, जैसे कि गणितीय गणनाओं में प्रयुक्त कुछ निश्चित परिमाण। वहीं दूसरी ओर काल्पनिक क़ीमतों का रूप कभी-कभी प्रत्यक्ष या परोक्ष मूल्य सम्बन्धों को छिपा भी सकता है; मिसाल के लिए, ऐसी ज़मीन जिसे जोता न गया हो, उसकी क़ीमत हो सकती है, भले ही उसमें मानवीय श्रम ने लगने की वजह से उसका कोई मूल्य न हो।

... सोना मूल्य का एक आदर्श मापक सिर्फ़ इसीलिए है क्योंकि विनिमय की प्रक्रिया में उसने अपने आपको एक मुद्रा माल के रूप में स्थापित कर लिया है। मूल्य के आदर्श मापक के पीछे नक़दी छुपी होती है।

परिचलन के माध्यम के रूप में मुद्रा अपना काम एक ऐसा उपकरण बनकर अंजाम देती है जिसके द्वारा मालों का परिचलन संभव होता है....

काग़ज़ी मुद्रा सोना या मुद्रा को प्रदर्शित करने वाला टोकन है। उसके और मालों के मूल्यों के बीच सम्बन्ध यह है कि माल आदर्श रूप में सोने की उतनी ही मात्रा को प्रदर्शित करते हैं जितना कि प्रतीकात्मक रूप से उस काग़ज़ द्वारा किया जाता है। जिस हद तक काग़ज़ी मुद्रा सोने को प्रदर्शित करती है (जिसका अन्य मालों की ही भाँति मूल्य है), सिर्फ़ उसी हद तक यह मूल्य का प्रतीक होती है।

... जिस तरह मालों के बीच के सभी गुणात्मक अन्तर मुद्रा में बदलकर मिट जाते हैं, उसी तरह से अपनी बारी में मुद्रा रूपी यह उग्र सपाटकर्ता सभी अन्तरों को मिटा देता है। परन्तु मुद्रा स्वयं एक माल है, एक बाहरी वस्तु जो किसी व्यक्ति की निजी सम्पत्ति बनने में सक्षम है। इस प्रकार सामाजिक शक्ति निजी शक्ति में तब्दील हो जाती है। यही वजह है कि प्राचीन काल में लोग आर्थिक और नैतिक व्यवस्था का ध्वंस करने वाली चीज़ के रूप में मुद्रा की भर्त्सना करते थे। आधुनिक समाज...सोने की, अपने होली ग्रेल (पवित्र चषक) की, अपने जीवन के अन्तरतम सिद्धान्त के कान्तिमय मूर्त रूप की तरह जयजयकार करता है।

मुद्रा का पूँजी के रूप में रूपान्तरण

मालों का परिचलन पूँजी का आरंभिक बिन्दु है...

मुद्रा के रूप में मुद्रा और पूँजी के रूप में मुद्रा के बीच का प्रमुख अन्तर क्रमश: उनके परिचलन के रूपों के बीच का अन्तर ही है।

मालों के परिचलन का सरलतम रूप $C - M - C$ है, यानी माल का मुद्रा के रूप में रूपान्तरण, और फिर मुद्रा का माल के रूप में पुन: रूपान्तरण; यानी ख़रीदने के लिए बेचना। परन्तु इस रूप के साथ ही साथ हम एक अन्य रूप भी देखते हैं जो विशिष्ट तौर पर अलग होता है। हम $M - C - M$ रूप भी पाते हैं, मुद्रा का मालों में रूपान्तरण, और फिर मालों का मुद्रा के रूप में पुन: रूपान्तरण, यानी बेचने के लिए ख़रीदना। इनमें से बाद वाले तरीके से परिचलित मुद्रा इस प्रकार पूँजी में रूपान्तरित हो जाती है, वह पहले ही संभावित पूँजी है।

...मालों का साधारण परिचलन (ख़रीदने के लिए बेचना) एक ऐसे मक़सद को पूरा करने का माध्यम है, जो परिचलन के कार्यक्षेत्र से बाहर होता है; यानी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयोग-मूल्य के विनियोजन का माध्यम। वहीं दूसरी ओर पूँजी के रूप में मुद्रा का परिचलन अपने आप में एक लक्ष्य होता है, क्योंकि मूल्य का संवर्धन केवल इस सतत नवीनीकृत गति में ही संभव है। नतीजतन पूँजी के परिचलन की कोई सीमा नहीं है।

इस गति के सचेत प्रतिनिधि के तौर ही पर मुद्रा का स्वामी एक पूँजीपति बनता है। उसका व्यक्तित्व, या यूँ कहें कि उसकी जेब ही वह बिन्दु है जहाँ से मुद्रा निकलती है और जहाँ वह वापस लौटती है।

इस परिचलन की वस्तुगत आवश्यकता, मूल्य में संवर्धन, वास्तव में उसका मनोगत लक्ष्य है; और जब तक वह अमूर्त सम्पदा का विनियोजन उसके क्रियाकलापों का एकमात्र लक्ष्य होता है, केवल तब तक ही वह एक पूँजीपति के रूप में अथवा इच्छा सम्पन्न व चेतना सम्पन्न साक्षात पूँजी के तौर पर काम करता है। अत: उपयोग-मूल्य को कभी भी पूँजीपति का प्रत्यक्ष लक्ष्य नहीं मानना चाहिए। और न ही किसी एक लेनदेन में मुनाफ़ा उसका लक्ष्य होता है, क्योंकि उसका लक्ष्य तो मुनाफ़ाखोरी की कभी न ख़त्म होने वाली प्रक्रिया है...

जब मुद्रा पूँजी बन जाती है, तो परिचलन जो रूप ग्रहण करता है, वह माल की प्रकृति, मूल्य, मुद्रा और यहाँ तक कि परिचलन से सम्बन्धित अब तक हमने जितने नियमों का अध्ययन किया है, उन सब से टकराता है।

उपयोग-मूल्य के मामले में जहाँ विनिमय करने वाले दोनो पक्षों को लाभ होता है, विनिमय-मूल्य के मामले में दोनों को लाभ होना असंभव है। बल्कि यहाँ हमें यह कहना चाहिए: ''जहाँ समानता का अस्तित्व होता है वहाँ कोई लाभ नहीं होता...''

अधिशेष मूल्य का निर्माण और इसलिए मुद्रा के पूँजी में रूपान्तरण की व्याख्या न तो इस परिकल्पना के द्वारा की जा सकती है कि विक्रेता मालों को उनके मूल्य से ऊपर बेचता है, और न ही इस परिकल्पना के द्वारा कि ख़रीदार उन्हें उनके मूल्य से नीचे बेचता है....

हम जिस भी तरीके से देखें, कुल योग वही रहता है। यदि समतुल्य चीज़ों का विनिमय किया जाये तो कोई अधिशेष मूल्य नहीं पैदा होता; और यदि ग़ैर-समतुल्य चीज़ों का विनिमय किया जाये तो भी कोई अधिशेष मूल्य नहीं पैदा होता। परिचलन, यानी मालों का विनिमय, कोई मूल्य नहीं पैदा करता।

... चूँकि मुद्रा के पूँजी में रूपान्तरित होने अथवा अधिशेष मूल्य के पैदा होने की व्याख्या महज़ परिचलन के नतीजे के रूप में असंभव है, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि व्यापारी की पूँजी केवल इसलिए पैदा होती है क्योंकि व्यापारी ख़रीदने वाले उत्पादक और बेचने वाले उत्पादक के बीच में ख़ुद को परजीवी के समान धकेलकर दोनों को ठगता है। इस मायने में बेंजामिन फ्रैंकलिन कहते हैं: ''युद्ध डाकेजनी है, व्यापार आम तौर पर ठगी है''। अगर हम व्यापारी की पूँजी के संवर्धन की व्याख्या मालों के उत्पादकों की ठगी से अधिक और किसी चीज़ की वजह से करते हैं, तो हमें बीच की कड़ियों के एक लम्बे सिलसिले की चर्चा करनी होगी, जिसका हमारे पास अभी भी अभाव है, जबकि हमारा सरोकार सिर्फ़ मालों के परिचलन और इसके साधारण कारकों से है।

...श्रीमान थैलीशाह, जो अभी केवल भ्रूण रूप में पूँजीपति हैं, को अपने मालों को उनके मूल्य पर ख़रीदना होगा, और उन्हें उनके मूल्य पर बेचना होगा; परन्तु इस प्रक्रिया के अन्त में उन्हें परिचलन के प्रारम्भ में डाले गये मूल्य से अधिक मूल्य प्राप्त करना होगा। उन्हें एक इल्ली से बढ़कर तितली बनना होगा, और यह रूपान्तरण परिचलन के क्षेत्र और उसके बाहर एकसाथ होना होगा। तो यह है समस्या की स्थिति। यह है वो चुनौती जिससे हमें जूझना है!

मुद्रा का पूँजी में रूपान्तरण: श्रम शक्ति की ख़रीद और बिक्री

... थैलीशाहों को इतना खुशक़िस्मत होना होता है कि उन्हें बाज़ार में परिचलन के क्षेत्र में ऐसा माल मिले जिसके उपयोग-मूल्य का यह विशिष्ट गुण हो कि वह मूल्य का स्रोत हो। ऐसा माल जिसका वास्तविक उपभोग वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा श्रम मूर्त रूप धारण करता है, और इसलिए जिसके द्वारा मूल्य पैदा होता है। इस शख़्स को बाज़ार में वाक़ई ऐसा विशिष्ट माल मिल जाता है। उसे यह श्रम करने की क्षमता के रूप में मिलता है, यानी श्रमशक्ति के रूप में।

....

परन्तु मुद्रा के स्वामी को ऐसी श्रमशक्ति मिल सके जो स्वयं को बाज़ार में माल की तरह बेच रही हो, इसके लिए कई शर्तों को पूरा होना ज़रूरी है।... श्रमशक्ति को बेचने वाला और मुद्रा का स्वामी दोनों बाज़ार में मिलते हैं और समान अधिकार वाले मालों के स्वामी के तौर पर पारस्परिक सम्बन्धों में बँधते हैं, उनमें फ़र्क केवल यह होता है कि उनमें से एक ख़रीदार है और दूसरा विक्रेता; यानी वे क़ानून की निगाह में समान व्यक्ति हैं।

ऐसा सम्बन्ध केवल इस समझ पर क़ायम रह सकता है कि श्रमशक्ति का स्वामी श्रमशक्ति को एक निश्चित समय के लिए ही बेचे, न कि उससे अधिक समय के लिए; क्योंकि यदि वह उसे हमेशा के लिए बेचता है, तो वह स्वयं को बेच देगा, वह अपने आप को एक स्वतंत्र व्यक्ति से एक दास के रूप में तब्दील कर लेगा, यानी वह एक माल का स्वामी होने की बजाय ख़ुद एक माल के रूप में तब्दील हो जायेगा।...

यदि मुद्रा के स्वामी को बाज़ार में श्रमशक्ति पानी है, तो इसके लिए दूसरी आवश्यक शर्त यह है कि मज़दूर, यानी श्रमशक्ति का स्वामी, ऐसा होना चाहिए कि जिन मालों में उसके श्रम ने मूर्त रूप धारण किया है, उन्हें बेच सकने की बजाय वह अपनी श्रमशक्ति को बेचने के लिए तैयार हो, जिसका उसके जीवित व्यक्तित्व से अलग कोई अस्तित्व नहीं होता...

यह विशिष्ट माल, यानी श्रमशक्ति, अब और क़रीब से ध्यान देने की माँग करती है। अन्य सभी मालों की ही तरह इसका भी मूल्य होता है। यह मूल्य कैसे निर्धारित होता है?

किसी भी अन्य माल की ही तरह श्रमशक्ति का मूल्य भी इस विशिष्ट माल के उत्पादन, और नतीजतन उसके पुनरोत्पादन में लगे श्रमकाल द्वारा निर्धारित होता है। जब तक इसमें मूल्य निहित है, श्रमशक्ति स्वयं इसमें लगे औसत सामाजिक श्रम की किसी निश्चित मात्रा को ही प्रदर्शित करती है....

श्रमशक्ति का स्वामी नश्वर है। नतीजतन यदि उसे सदैव बाज़ार में उपस्थित होना है, जोकि मुद्रा को पूँजी में रूपान्तरित करने के लिए आवश्यक है, श्रमशक्ति के विक्रेता को ख़ुद को चिरायु बनाना होता है, प्रजनन के द्वारा।

ह्रास और मौत की वजह से बाज़ार से निकली श्रमशक्ति को लगातार कम से कम उसी मात्रा में श्रमशक्ति से प्रतिस्थापित करना होता है। अत: श्रमशक्ति के उत्पादन के लिए आवश्यक जीवन-निर्वाह के साधनों के कुल योग में उनके जीवन-निर्वाह के साधन भी शामिल होते हैं जो उनकी श्रमशक्ति को प्रतिस्थापित करेंगे, यानी मज़दूरों के बच्चे...

निम्नतम सीमा, या श्रमशक्ति के मूल्य का न्यूनतम मान, निश्चित मात्रा में उन मालों के मूल्य द्वारा निर्धारित होती है जिनकी दैनिक आपूर्ति के बिना श्रमशक्ति का स्वामी, वह इंसान, अपने जीवन के लिए आवश्यक प्रक्रियाओं को पुनर्नवा नहीं कर सकता; यानी यह जीवन-निर्वाह के उन साधनों के मूल्य द्वारा निर्धारित होता है जो भौतिक रूप से अपरिहार्य हैं। यदि श्रमशक्ति की क़ीमत इस न्यूनतम तक गिरती है तो यह अपने मूल्य से भी नीचे गिर जाती है, जो यह दिखाता है कि श्रमशक्ति सिर्फ़ विकृत रूप में स्वयं को क़ायम रख सकती है और विकसित कर सकती है। परन्तु हर माल का मूल्य उसकी सामान्य गुणवत्ता में उत्पादन के लिए आवश्यक श्रमकाल से ही निर्धारित होता है।

...उन देशों में जहाँ पूँजीवादी उत्पादन पद्धति स्थापित हो चुकी है, श्रमशक्ति का भुगतान अनुबंध में निर्दिष्ट समय तक काम करने के बाद ही किया जाता है; उदाहरण के लिए सप्ताह के अन्त में। इसलिए हर जगह मज़दूर अपनी श्रमशक्ति के उपयोग-मूल्य को अग्रिम तौर पर पेश करता है; श्रमशक्ति का विक्रेता दाम मिलने से पहले ही ख़रीदार को अपने उपयोग-मूल्य का उपभोग करने की अनुमति देता है; हर जगह मज़दूर पूँजीपति को ऋण देता है।

... हम मुद्रा के स्वामी और श्रमशक्ति के स्वामी का पीछा उत्पादन के केन्द्र बिन्दु तक करेंगे, उस दरवाज़े की दहलीज़ तक जिसके ऊपर यह लिखा है: ''व्यवसाय के अतिरिक्त और किसी चीज़ के लिए प्रवेश की आज्ञा नहीं'' यहाँ हम न सिर्फ़ यह देखेंगे कि पूँजी कैसे उत्पादन करती है, बल्कि यह भी कि यह ख़ुद कैसे उत्पादित होती है। हम अन्तत: अधिशेष मूल्य के निर्माण का रहस्य खोज लेंगे।

... वह जो बाज़ार में मुद्रा के स्वामी के रूप में आया था, पूँजीपति के रूप में लम्बे डग भरते हुए बाज़ार को छोड़ता है; वह जो बाज़ार में श्रमशक्ति के स्वामी के रूप में आया था, मज़दूर के रूप में घिसटकर चलता है। पहला वाला अहंकारी, आत्मतुष्ट, व्यवसाय पर तीख़ी नज़र रखने वाला होता है; दूसरा वाला भीरु, अनिच्छुक, एक ऐसे व्यक्ति की तरह होता है जो बाज़ार में अपनी ही चमड़ी लाता है और उसे इसके अलावा और कोई उम्मीद नहीं रहती कि उसकी चमड़ी उधेड़ी जायेगी।

अनुवाद: आनन्द सिंह

आर्थिक संकट की चपेट में विकसित मुल्कों के मेहनतकश लोग

वर्ष 2008 में शुरू हुई वैश्विक मन्दी के बाद दुनिया की पूँजीवादी अर्थव्यवस्था एक ऐसे संकट की चपेट में है जिसमें से यह अभी तक निकल नहीं सकी है और भविष्य में भी निकल सकने की कोई सम्भावना नज़र नहीं आ रही। पर पूँजीपति वर्ग अपने संकट का बोझ हमेशा से आम मेहनतकश लोगों पर डालता आया है। वैसे तो संसार की व्यापक मेहनतकश आबादी पूँजीवादी व्यवस्था में सदा महँगाई, बेरोज़गारी, ग़रीबी, भुखमरी आदि समस्याओं से जूझती रहती है पर मन्दी के दौर में ये समस्याएँ और बड़ी आबादी को अपने शिकंजे में ले लेती हैं। बेरोज़गारों की लाइनें और तेज़ी से लम्बी होती हैं और रोज़गारशुदा आबादी की आमदनी में गिरावट आती है। इसी कारण से आज संसार के सबसे विकसित मुल्कों में भी आम लोगों की हालत दिन-ब-दिन ख़राब होती जा रही है। पूँजीवादी व्यवस्था की बिगड़ती हालत को उजागर करते हुए रोज़ नये आँकड़े सामने आ रहे हैं। ब्रिटेन के नामी अखबार 'गार्जियन' की एक ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका, कनाडा, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, फ्रांस, इटली, स्पेन और जर्मनी में 2008 के संकट के बाद के 'मन्द मन्दी' के दौर में लोगों की, ख़ास तौर पर नौजवानों का जीवन स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है। इन मुल्कों में 22 से 35 वर्ष आयु की नौजवान मेहनतकश आबादी बेरोज़गारी और कम वेतन के कारण कर्ज़ों में डूबी हुई है। इन्हीं आठ में से पाँच देशों के नौजवान जोड़ों और परिवारों की आमदनी बाकी वर्गों से 20 फ़ीसदी कम है। जबकि इससे पिछली पीढ़ी के लोग 1970 और 1980 के दशक में औसत राष्ट्रीय आमदनी से कहीं ज़्यादा कमाते थे। युद्धों या प्राकृतिक आपदाओं के बाद, पूँजीवाद के इतिहास में यह शायद पहली बार हुआ है जब नौजवान आबादी की आमदनी समाज के बाकी वर्गों से बहुत नीचे गिरी है।

विकसित मुल्कों के लोग अपने भविष्य को लेकर काफी असुरक्षित महसूस कर रहे हैं। 'इप्सोस मोरी' नामक ब्रिटिश एजेंसी के सर्वेक्षण के अनुसार 54 फ़ीसदी लोग यह मानते हैं कि आने वाली पीढ़ी की हालत पिछली पीढ़ी से भी बदतर होगी। इसका कारण है कि एक तरफ तो क़ीमतों और किरायों में निरन्तर वृद्धि हो रही है और दूसरी तरफ व्यापक आबादी के लिए रोज़गार के अवसर और वेतन लगातार कम होते जा रहे हैं। सन् 2013 की एक रिपोर्ट के अनुसार विकसित पूँजीवादी देशों में लगभग 3 करोड़ नौजवान शिक्षा और रोज़गार से वंचित हैं। यूनान जो कि इस रिपोर्ट का हिस्सा नहीं है, उसके हालात तो और भी भयानक हैं। यूनान की 60 फ़ीसदी से भी ज़्यादा नौजवान आबादी बेरोज़गार है। मकान की क़ीमतें पिछले 20 वर्षों में किसी भी और समय से ज़्यादा तेज़ी से बढ़ी हैं। इन देशों में जल्दी ही ऐसे लोगों की गिनती 50 फ़ीसदी से ज़्यादा हो जायेगी जिनके पास अपना घर नहीं है। इस आर्थिक तंगी का असर लोगों के सामाजिक जीवन में भी दिख रहा है। 1980 के मुकाबले एक औरत विवाह करने के लिए 7.1 वर्ष ज़्यादा इन्तज़ार करती है और बच्चा पैदा करने की औसत आयु 4 वर्ष बढ़ गयी है। ज़्यादातर लोग यह जानकर परेशान हैं कि वह सारी उम्र काम करके भी कर्ज़दार रहेंगे और अपना घर नहीं खरीद सकेंगे।

आम तौर पर पूँजीपति वर्ग अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए सापेक्षिक रूप से मज़दूरों और अन्य कामगारों के वेतन कम करता है। उदाहरण के लिए मज़दूरों का वेतन बढ़ाये बिना जब उनके द्वारा तैयार माल की क़ीमत बढ़यी जाती है तो सापेक्षिक रूप में उनका वेतन कम कर दिया जाता है। पर अमेरिका और इटली में निरपेक्ष तौर पर भी वेतन कम हुआ है। अमेरिका में औसत मज़दूरी 1979 में 29,638 यूरो से गिरकर 2010 में 27,757 यूरो हो गयी। फ्रांस, अमेरिका और इटली में नौजवान मेहनतकश लोगों की आमदनी पैंशन ले रहे रिटायर वर्ग से कम है।

'गार्जियन' अख़बार के लेखकों ने जिस तरह ये आँकड़े पेश किये हैं, उन्होंने लोगों के ग़ुस्से को ग़रीबी, बेरोज़गारी और ख़राब होती जीवन स्थितियों के लिए ज़िम्मेदार इस आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था से हटाकर इनके मुकाबले पेंशन पर जी रहे रिटायर वर्ग की ओर मोड़ने की कोशिश की है। उन्होंने 'यूरोपीय केंद्रीय बैंक' के प्रमुख मारियो द्राघी के हवाले से कहा है कि "कई देशों में सख़्त श्रम क़ानून पक्की नौकरियों और ज़्यादा वेतन वाले कुछ पुराने लोगों को बचाने के लिए बनाये गये हैं। इसका नुकसान नौजवानों को होता है। जो कम वेतन और ठेके पर काम करने के लिए मजबूर हैं और मन्दी की हालतों में सबसे पहले बेरोज़गार होते हैं"। पक्की नौकरियाँ, ज़्यादा वेतन और सभी के लिए उच्च जीवन स्तर की माँग करने के बजाय नौजवानों को पेंशन ले रहे रिटायर वर्ग के ख़िलाफ़ भड़काया जा रहा है।

यह कोई नयी घटना नहीं है। मौजूदा लुटेरी व्यवस्था इसी तरह काम करती है। आर्थिक संकट के दौर में यह घटना और तेज़ हो जाती है और ज़्यादा स्पष्ट नज़र आती है। असल में दूसरे विश्व युद्ध के बाद मज़दूर इंकलाब के डर से जो सहूलियतें इन मुल्कों की हुकूमतों ने 'पब्लिक सेक्टर' खड़ा करके पिछली पीढ़ियों को दी थीं, उससे विकसित देशों की आम आबादी की बुनियादी ज़रूरतें पूरी हुईं और उनका जीवन स्तर ऊँचा उठा था। पर आज किसी समाजवादी राज और किसी बड़े जन-आन्दोलन की नामौजूदगी की हालत में पूँजीवादी सत्ता आर्थिक संकट से निपटने के लिए जन कल्याण के वे सारे पैकेज, पेंशनें, बेरोज़गारी भत्ते आदि ख़त्म कर रही है और सारे क्षेत्र मुनाफ़ाख़ोर पूँजीपतियों के हाथों में दे रही है। साथ ही इन नीतियों के परिणाम स्वरूप लोगों में पैदा हो रहे आक्रोश को कुचलने के लिए फासीवादियों को सत्ता में तैनात कर रही है।

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक संकट के कारण पूँजी की अपनी चाल में ही समाये हुए हैं। इस समय विश्व पूँजीवादी-साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था भीषण संकट का शिकार है और इसमें से निकलने की कोई सम्भावना नज़र नहीं आ रही। यह संकट आने वाले समय में और भी गहरा होगा और लोगों की बेचैनी भी बढ़ेगी। इंक़लाबी ताक़तों की कमज़ोरी की हालत में फासीवादियों का उदय हो रहा है। विश्व भर में ये फासीवादी लोगों के ग़ुस्से को धार्मिक अल्पसंख्यकों, कम्युनिस्टों, मज़दूरों और मेहनतकशों के विरुद्ध मोड़ने की कोशिशें कर रहे हैं। आज ज़रूरी है कि इंक़लाबी ताक़तें मज़दूरों और मेहनतकशों को उनके ऐतिहासिक मिशन से परिचित करवाएं। वह मिशन पूँजीवाद को जड़ से मिटाने के लिए समाजवादी इंकलाब करने का है क्योंकि सिर्फ़ समाजवादी व्यवस्था ही लोगों को इस लुटेरी व्यवस्था की मुसीबतों से आज़ाद कर सकती है।

– अमनदीप

डोम्बिवली फैक्टरी विस्फोट : मुनाफ़े की हवस व सरकारी लापरवाही ने लील ली कई जानें

बीती 26 मई को मुम्बई के उपनगर डोंबिवली के एमआईडीसी स्थित आचार्य कैमिकल्स ग्रुप की प्रोबेस इंटरप्राइज़ेज़ कम्पनी में बॉयलर में विस्फोट हुआ। विस्फोट इतना ज़बर्दस्त था कि पल भर में 3 मंजिल की इमारत मलबे में तब्दील हो गयी और विस्फोट की जगह पर 15 फुट का गड्ढा हो गया। धमाके की आवाज़ 5 किलोमीटर तक सुनाई दी और 2 किलोमीटर तक के क्षेत्र के करीब 600 घरों को क्षति पहुँची। प्रशासन के अनुसार बॉयलर पर काम कर रहे दो मज़दूर धमाके में ही मारे गये और 12 अन्य भीषण रूप से घायल हुए जिसमें से यह रिपोर्ट लिखे जाने तक 9 की मौत हो चुकी है। 150 से ज़्यादा लोग घायल हुए हैं जो अस्पतालों में भर्ती हैं। 20 फीट ऊँचाई और 50 टन वज़न के बॉयलर के फटने से निकले उसके बड़े-बड़े टुकड़ों ने काफी दूरी तक क्षति पहुँचाई। विस्फ़ोट के ऐसे ही एक बड़े टुकड़े की चपेट में आने से धमाके की जगह से करीब एक किलोमीटर दूर एक कार के ड्राइवर की भी मौत हो गयी। धमाके के बाद लगी भीषण आग पर 3 घंटे बाद ही काबू पाया जा सका। अभी भी पूरे इलाक़े के लोग ख़ौफ में जी रहे हैं। प्रशासन द्वारा मृतकों की संख्या के ये आँकड़े भी झूठे प्रतीत होते हैं। विस्फ़ोट के दिन पुलिस ने किसी भी स्थानीय व्यक्ति को उस इलाक़े में प्रवेश नहीं करने दिया। विस्फ़ोट की भयावहता देखते हुए व स्थानीय लोगों से बातचीत के आधार पर मृतकों की संख्या 50 से ज़्यादा होने के आसार हैं।

धमाके के बाद मीडिया में दो-तीन दिनों तक यह भयानक घटना दिखायी जाती रही और इस पर तमाम बहसें होती रहीं। मुख्यमंत्री देवेंद्र फडनवीस ने भी घटनास्थल का दौरा किया और जाँच का आदेश दिया। उद्योग मंत्री ने कहा कि ऐसे कदम उठाये जायेंगे कि ऐसी दुर्घटनाएँ भविष्य में ना हों। इसके साथ ही इन कैमिकल फैक्ट्रियों को रिहायशी इलाक़े से दूर ले जाने की भी व्यवस्था की जायेगी। वैसे ये पहली बार नहीं है जब ऐसे आश्वासन दिये गये हों या मुख्यमंत्री ने जाँच का आदेश दिया हो। जाँच का आदेश तब भी दिया गया था जब 7 दिसम्बर 2013 को गायकर कम्पाउंड की एक कैमिकल कम्पनी में बॉयलर विस्फोट से 3 मज़दूरों की मौत हो गयी और 2 जख़्मी हुए थे। जाँच का आदेश तब भी दिया गया था जब 14 मई 2014 में केमस्टार कम्पनी की डिस्टिलेशन यूनिट में आग लगने से एक मज़दूर की मौत हो गयी और 3 जख़्मी हुए। जाँच के आदेश तब भी दिये गये थे जब 2015 में भिवंडी के शफीक कम्पाउंड में भयंकर आग लगने से 3 लोगों की मौत हो गयी थी और कई घायल हुए थे। इसके अतिरिक्त पिछले पाँच सालों के दौरान हुए 30 से ज़्यादा हादसों के बाद भी ऐसे ही जाँच के आदेश और आश्वासन दिये गये होंगे। पर ना तो ये जाँचें कभी खत्म हुईं और ना ही ऐसे हादसे और मौतों में कोई कमी आयी।

मीडिया ने जो कुछ भी दिखाया वो मामले को सुलझाने से ज़्यादा लोगों को भ्रम में डालने वाला था कि आखिर ग़लती किसकी थी? हम यहाँ ख़ुद देखेंगे कि कौन इस भयानक घटना का ज़िम्मेदार है।

महाराष्ट्र औद्योगिक विकास महामंडल (एमआईडीसी) के डोंबिवली क्षेत्र में 450 से ज़्यादा कारख़ाने हैं। इनमें से 125 कारख़ाने कैमिकल कम्पनियों के हैं। किसी भी कारख़ाने में सुरक्षा के लिए नियम और क़ानून बने हुए हैं जिनकी निगरानी औद्योगिक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य विभाग करता है। किसी बॉयलर वाले प्लांट में ये सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि बॉयलर रिएक्टर को उचित जगह लगाया जाये, ख़तरनाक या ज्वलनशील कैमिकल्स के सही रखरखाव की व्यवस्था की जाये, रिएक्टर एक खुली जगह में रखा हो, फैक्ट्री में बचाव कार्य के लिए मार्जिन एरिया हो, आग या आपात से बचने के सुरक्षा इन्तज़ाम हों। इसके अतिरिक्त कारख़ाने द्वारा एक सुरक्षा अधिकारी को नियुक्त किया जाये जो कारख़ाने में चल रही हर गतिविधि में सुरक्षा का ध्यान रखे। कारख़ाने में सुरक्षा नियमों का पालन हो रहा है कि नहीं इसके लिए समय-समय पर सरकार द्वारा या किसी तीसरी एजेंसी द्वारा कारख़ाने की सुरक्षा जाँच होती रहनी चाहिए। पर वास्तव में होता कुछ और ही है। कारख़ाने के मालिक जिनके जीवन का परम ध्येय किसी भी तरह ज़्यादा से ज़्यादा पैसा कमाना है, इन सारे नियमों को ताक पर रखकर काम करते हैं। उनके लिए तो सुरक्षा पर इतना पैसा खर्च करने की बजाय सुरक्षा की निगरानी करने वाले फैक्ट्री इंस्पेक्टर या अधिकारी को ही खिला-पिला कर चुप कराना बेहतर होता है। और जहाँ तक कामगारों के जीवन के लिए ख़तरे की बात है, उन लोगों की ज़िन्दगी की क़ीमत कारख़ाना मालिक की नज़र में है ही क्या। ऐसे में ये कारख़ाने बिना किसी सुरक्षा के धड़ल्ले से चलते रहते हैं जिनमें कभी भी दुर्घटना हो सकती है। एक संस्था 'वनशक्ति' के एक सर्वे के अनुसार डोंबिवली एमआईडीसी क्षेत्र एक टिक-टिक करते टाइम बम की तरह है जहाँ 99.99 प्रतिशत कम्पनियों में औद्योगिक सुरक्षा नियमों का पालन नहीं होता। इन कारख़ानों में छोटी-मोटी घटनाएँ तो अक्सर होती रहती हैं पर ये छोटे-मोटे मामले कारख़ाने के गेट के बाहर पहुँच ही नहीं पाते। लोगों को पता तभी चलता है जब ऐसी बड़ी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं।

अगर सरकार की भूमिका की बात करें तो ऐसा लगता है कि मौत के इस खेल में सारी सरकारें और नौकरशाही शामिल हैं। असल बात तो ये है कि सरकार ख़ुद इन सुरक्षा नियमों को दफ़नाने में लगी है। और ये सब निवेश को बढ़ावा देने के नाम पर हो रहा है। एक ओर कारख़ानों को नियमों के पालन से छूट दी जा रही है, तो दूसरी ओर नियमों की निगरानी करने वाले विभागों में कारख़ाना इंस्पेक्टरों और अधिकारियों की संख्या को बहुत कम किया जा रहा है। डोंबिवली एमआईडीसी क्षेत्र में ही 450 कारख़ानों पर बस एक फैक्ट्री इंस्पेक्टर है। कल्याण औद्यौगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य संचालनालय के अन्तर्गत डोंबिवली, अंबरनाथ, बदलापुर, भिवंडी, शहापुर, वाडा, मोखाडा आदि इलाक़ों की करीब 1000 से ज़्यादा कम्पनियाँ आती हैं मगर इन कम्पनियों की निगरानी संचालनालय के केवल 4 अधिकारी करते हैं। इससे समझा जा सकता है कि वह निगरानी कैसी होती होगी और कितने समय में एक बार होती होगी। ज़्यादातर पद खाली पड़े हुए हैं। स्टाफ़ की कमी की वजह से कम्पनियों का सुरक्षा ऑडिट भी न तो विभाग की तरफ से होता है और न ही किसी तीसरी एजेंसी से कराया जाता है। ज़्यादातर कम्पनियों के मालिक ख़ुद ही सुरक्षा ऑडिट कर के भेज देते हैं। यानि चोर ख़ुद जाँच करके रिपोर्ट दे देता है कि सबकुछ ठीकठाक है। जहाँ तक उद्योग मंत्री द्वारा इन कारख़ानों को रिहायशी इलाक़े से बाहर ले जाने की बात है, तो इससे उलट उन्हीं की सरकार ने कुछ समय पहले ही 40 हेक्टेयर से बड़े औद्योगिक इलाक़ों में 40 प्रतिशत क्षेत्र में रिहायशी और व्यावसायिक इमारतें बनाने की छूट दे दी है जो पहले क़ानूनी तौर पर नहीं थी। इस प्रकार इस जानलेवा खेल में कम्पनी मालिकों और अधिकारियों के साथ सरकार भी शामिल है। सरकार द्वारा सुरक्षा नियमों और निगरानी विभागों को कमज़ोर करने और मालिकों द्वारा उस कमज़ोर विभाग का मुँह भी पैसे से बन्द करके असुरक्षित तरीके से काम कराने की वजह से ही ऐसी भयानक दुर्घनाएँ होती हैं। अब ये मामला शान्त हो रहा है। कुछ दिनों में सबकुछ पहले जैसा ही चलने लगेगा। फिर कोई दुर्घटना होगी और मज़दूर अपनी जानें गँवायेंगे। एक बार फिर मीडिया वाले हेडलाइन बनायेंगे, बहसें चलायी जायेंगी और एक बार फिर मुख्यमंत्री जाँच के आदेश देंगे।

– नितेश

गहराते आर्थिक संकट के बीच बढ़ रहा वैश्विक व्यापार युद्ध का ख़तरा

पिछले 7 जून को विश्व बैंक ने विश्व अर्थव्यवस्था के अपने नये मूल्यांकन में इसकी वृद्धि दर को फिर घटा दिया है। विश्व बैंक ने जनवरी में किये अपने पहले अनुमान 2.9% से कम करके वैश्विक आर्थिक वृद्धि दर 2016 में 2.4% रहने का अनुमान लगाया है। विश्व बैंक के अर्थशास्त्री ऐहान कोज़े ने कहा, "विश्व अर्थव्यवस्था की हालत नाज़ुक है। वृद्धि दर कमज़ोर स्थिति में है।" विश्व बैंक का यह ताज़ा अनुमान अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय कोष (आई.एम.एफ़.) की ओर से अप्रैल में किये गये 3.2% के अनुमान से भी कम है।

मार्क्सवादी दायरों में तो इस बात की सम्भावना पहले ही ज़ाहिर की जा रही थी कि वैश्विक अर्थव्यवस्था एक नये और गहरे आर्थिक संकट के दहाने पर खड़ी है लेकिन बुर्जुआ अर्थशास्त्री हकीकत से मुँह फेरकर हालत सुधरने के दावे किये जा रहे थे। जब कभी एक-आध महीने के लिए कुछ आँकड़े सकारात्मक नज़र आने लगते तो पूरी तस्वीर के एक छोटे से पहलू के रूप में इसे देखने के बजाय वे फ़ौरन आर्थिक संकट के अन्त की भविष्यवाणी करने लगते। लेकिन मौजूदा समय में जो सच्चाई एकदम सामने है उसे किसी भी तरह नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता क्योंकि बात सिर्फ अमेरिका या किसी एक-आध देश की नहीं है, बल्कि पूरी वैश्विक अर्थव्यवस्था की है जिसको आधार बनाकर ऐसे निराशावादी रुझान अब पेश किये जा रहे हैं। चाहे अमेरिका हो या लातिनी अमेरिका, यूरोपीय यूनियन हो या फिर जापान, चीन या अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाएँ, सबकी हालत इस समय पतली है।

और इस सिकुड़ते वैश्विक व्यापार के बीच, वैश्विक स्तर पर पैदा हो रहे अधिशेष मूल्य में से अपना हिस्सा बरकरार रखने के लिए या उसको बढ़ाने के लिए विश्व की बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के बीच आपसी खींचतान भी तीखी होती जा रही है। अपने आर्थिक हितों को ध्यान में रखते हुए सभी देश नये व्यापारिक गँठजोड़ क़ायम कर रहे हैं, अपने लिए वक्ती तौर पर नये सहयोगी ढूँढ़ रहे हैं। नये पैदा हुए इस भू-राजनीतिक तनाव के केन्द्र में विश्व की दो सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ, अमेरिका और चीन हैं और बाकी देश इनके इर्द-गिर्द अपने-आप को व्यवस्थित कर रहे हैं।

अमेरिका और चीन के बीच चल रही प्रतिस्पर्धा का सबसे नया इज़हार मई के आखिरी हफ्ते में अमेरिकी अन्तरराष्ट्रीय व्यापार कमीशन की ओर से चीनी इस्पात कम्पनियों के ख़िलाफ़ शुरू की गयी जाँच-पड़ताल है जिसके तहत अमेरिकी इस्पात उद्योग की ओर से यह इल्ज़ाम लगाया गया है कि चीनी इस्पात कम्पनियों ने उनकी गुप्त जानकारियों को चुराया है और चीनी कम्पनियाँ अमेरिकी इस्पात कम्पनियों को नुकसान पहुँचाने के लिए जान-बूझकर अपनी क़ीमतें कम कर रही हैं। जहाँ तक गुप्त जानकारी चोरी करने की बात है, तो सभी बड़ी कम्पनियाँ इस काम में लगी ही रहती हैं, मगर अमेरिका के दूसरे दावे में सच्चाई है। इस समय चीन में इस्पात की अतिरिक्त पैदावार है। एक साल में जितना इस्पात पूरा यूरोप पैदा करता है, उससे ज़्यादा चीन पैदा करता है। सस्ती श्रम-शक्ति के आधार पर चीन ने विशालकाय इस्पात उद्योग खड़ा किया है और यह इस्पात वह अमेरिका में सस्ते दाम पर बेच रहा है। इससे उन अमेरिकी कम्पनियों के लिए मुकाबले में टिके रहने का संकट पैदा हो गया है जो स्थानीय महँगे श्रम पर निर्भर हैं। कई अमेरिकी इस्पात कम्पनियाँ बन्द भी हो चुकी हैं जिसके चलते हजारों अमेरिकियों का रोज़गार छिन गया है। इसी को आधार बनाकर अनेक "राष्ट्रवादी" ताक़तें और उनके प्रतिनिधि अमेरिका में चुनावों के मौसम को देखते हुए दावा कर रहे हैं कि इन खोये रोज़गारों की वजह पूँजीवादी ढाँचा नहीं बल्कि चीन है। इस सबका एक दूसरा पहलू यह भी है की चीन के इस बड़े इस्पात उद्योग ने पिछले कुछ समय से वैश्विक अर्थव्यवस्था के गहरे आर्थिक संकट में कुछ राहत भी दे रखी थी और साथ ही कई अमेरिकी कम्पनियाँ चीन से आने वाले सस्ते इस्पात पर निर्भर भी हैं।

अमेरिकी कम्पनियों के इस आरोप पर चीनी कम्पनियों ने तीखा जवाब देते हुए कहा है कि अमेरिका विश्व व्यापार संगठन के मुक्त व्यापार के नियमों के ख़िलाफ़ जा रहा है। पूँजी का तर्क यही है कि यह ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़े वाले क्षेत्रों की ओर भागती है और सस्ती श्रम-शक्ति अधिक मुनाफ़े की गारंटी है। अमेरिकी कम्पनियाँ और विश्व की सारी कम्पनियाँ यही करती हैं कि जहाँ सस्ते से सस्ता श्रम उपलब्ध हो सकता है वहाँ अपने कारख़ाने स्थानांतरित करके अधिक मुनाफ़ा कमाने की फ़िराक में रहती हैं। अमेरिका की परेशानी का सबब सिर्फ यह है कि उसके वैश्विक प्रभुत्व को अब चीन से चुनौती मिल रही है, अधिशेष मूल्य में उसका हिस्सा चीन हथिया रहा है, इसीलिए अमेरिका चीन के ऊपर इस तरह का दबाव बनाने की कोशिश कर रहा है।

अमेरिका के इस विरोध का दूसरा कारण यह है कि चीन पिछले लम्बे समय से विश्व व्यापर संगठन में बाज़ार अर्थव्यवस्था का दर्जा हासिल करने की कोशिश कर रहा है। यह दर्जा मिलने से चीन बिना किसी रोक-टोक के अपने सस्ते माल को अमेरिका समेत दूसरे देशों में भेज सकेगा (जिसको अर्थशास्त्री 'डम्पिंग' भी कहते हैं)। अमेरिका चीन को यह दर्जा दिये जाने के ख़िलाफ़ है क्योंकि यह दर्जा मिलने के बाद अमेरिका चीन की इस हरकत के बदले उसके ख़िलाफ़ कोई क़ानूनी कार्रवाई करने की माँग नहीं कर सकेगा। दिलचस्प बात यह है कि अमेरिका के परम्परागत सहयोगी इंग्लैण्ड ने भी चीन की इस दावेदारी का समर्थन किया है। इंग्लैण्ड देख रहा है कि बिगड़ती आर्थिक हालत के मद्देनज़र चीन से उम्मीद रखना अधिक फायदेमन्द है। लन्दन पूरे विश्व की वित्तीय गतिविधियों का केन्द्र है और चीनी निवेशक इस समय भारी मात्रा में विदेशी बांडों और कम्पनियों में निवेश कर रहे हैं। इंग्लैण्ड भी इस मौके का भरपूर फ़ायदा उठाना चाहता है।

व्यापार युद्ध का बढ़ता ख़तरा

वैश्विक स्तर पर अतिउत्पादन के हालात, सिकुड़ रहा व्यापार, गिर रही उत्पादकता और अपनी मन्द अर्थव्यवस्थाओं के चलते वैश्विक स्तर पर अधिशेष मूल्य के बँटवारे को लेकर पूँजीवादी देशों के बीच होड़ तीखी होती जा रही है। अपने देशों के पूँजीपतियों के हितों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न देशों की पूँजीवादी सरकारें संरक्षणवादी नीतियों पर चल रही हैं जिसके चलते वैश्विक पैमाने पर व्यापार युद्ध छिड़ने का ख़तरा बढ़ गया है। बिलकुल उसी तरह का जिस तरह का 1929 की महामन्दी के बाद पैदा हुआ था जिसका अन्त दूसरे विश्व युद्ध के महाविनाश के रूप में हुआ। इस व्यापार युद्ध में आज केवल अमेरिका और चीन ही अगुआ नहीं हैं। यदि हम विश्व के बड़े पूँजीवादी देशों की पिछले दो साल की विदेश नीति और कूटनीति को देखें तो पता चलता है कि किस तरह एक व्यवस्थित और योजनाबद्ध तरीके से सभी साम्राज्यवादी देशों की इन नीतियों में बदलाव आया है। चाहे वह अमेरिका की ओर से चीन को घेरने के लिए ट्रांस-पैसिफिक सहकारिता (टीपीपी) के तहत बनाया जाने वाला गँठजोड़ और बदले में चीन की ओर से लातिनी अमेरिका, एशिया और मध्य-पूर्व में विभिन्न सन्धियों के ज़रिए अपना एक अलग गँठजोड़ क़ायम करना हो, चाहे वह इंग्लैण्ड के अन्दर आर्थिक राष्ट्रवाद का फैलाया जा रहा प्रचार हो (जिसकी तीखी अभिव्यक्ति अब इंग्लैण्ड के यूरोपीय यूनियन में रहने या ना रहने को लेकर होने वाले मतदान के रूप में सामने आ रही है)। चाहे वह जर्मनी द्वारा पिछले दो साल से लगातार अपने सैन्य खर्चे में बढ़ोत्तरी करना और इसके राजनीतिज्ञों द्वारा लगातार जर्मनी को वैश्विक पटल पर उसकी आर्थिक हैसियत के अनुसार भूमिका निभाने की वकालत करना हो और चाहे जापान द्वारा दूसरे विश्व-युद्ध के बाद अपने संविधान में दर्ज की गयी शान्तिवादी धारा को ख़त्म करना और सैन्य खर्चों में लगातार वृद्धि करना हो। ये सभी घटनाक्रम बड़ी पूँजीवादी शक्तियों के बीच तीखी होती होड़ के नतीजे हैं।

इतिहास का तथ्य यही है कि पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफ़े के लिए युद्ध जैसे अपराधों को लगातार अंजाम देता रहा है। आज इसके मुकाबले के लिए और इसे रोकने के लिए गाँधीवादी, शान्तिवादी कार्यक्रमों और अपीलों की नहीं बल्कि एक रैडिकल, जुझारू अमन-पसन्द आन्दोलन की ज़रूरत है जिसकी धुरी में मज़दूर वर्ग के वर्ग-संघर्ष के नये संस्करण होंगे।

– मानव

"अच्छे दिनों" की बुरी हक़ीक़त!

(पेज 16 से आगे)

ही प्रोविडेंट फंड आदि कोई अन्य लाभ।

4. 2015 में नयी कम्पनियाँ स्थापित होने की दर घटकर 2009 के स्तर पर पहुँच गयी है। अप्रैल 2016 में 2 हज़ार से भी कम नयी कम्पनियाँ रजिस्टर हुईं जबकि पिछले दशक में हर महीने औसतन 6 हज़ार कम्पनियाँ रजिस्टर होती थीं। पूँजीवादी व्यवस्था में नयी कम्पनियाँ नहीं आयेंगी तो रोज़गार कहाँ से मिलेगा?

5. इसके अलावा कम्पनियों का आकार घट रहा है – 1991 में 37% कम्पनियाँ 10 से ज़्यादा लोगों को रोज़गार देतीं थीं लेकिन अब सिर्फ 21% कम्पनियाँ ही ऐसी हैं।

रोज़गार की हालत तो यह हो चुकी है कि आम मज़दूरों और साधारण विश्वविद्यालय-कॉलेजों से पढ़ने वालों को तो रोज़गार की मण्डी में अपनी औकात पहले से ही पता थी, लेकिन अब तो आज तक 'सौभाग्य' के सातवें आसमान पर बैठे आईआईटी-आईआईएम वालों को भी बेरोज़गारी की आशंका सताने लगी है और इन्हें भी अब धरने-नारे की ज़रूरत महसूस होने लगी है क्योंकि मोदी जी के प्रिय स्टार्ट अप वाले उन्हें धोखा देने लगे हैं! फ्लिपकार्ट, एल एंड टी इन्फ़ोटेक जैसी कम्पनियों ने हज़ारों छात्रों को जो नौकरी के ऑफ़र दिये थे वे काग़ज़ के टुकड़े मात्र रह गये हैं क्योंकि अब उन्हें ज्वाइन नहीं कराया जा रहा है!

असल में देखें तो निजी सम्पत्ति और मुनाफ़े पर आधारित पूरी पूँजीवादी व्यवस्था ही असाध्य बीमारी की शिकार हो चुकी है; निजी मुनाफ़े-सम्पत्ति के लिए सामाजिक उत्पादन का अधिग्रहण करने वाली यह व्यवस्था आज की स्थिति में उत्पादन का और विस्तार नहीं कर सकती। कुल मिलाकर हम पूँजीवादी व्यवस्था के क्लासिक 'अति-उत्पादन' के संकट को देख रहे हैं। इस अति-उत्पादन का अर्थ समाज की आवश्यकता से अधिक उत्पादन नहीं है बल्कि एक तरफ 90% जनता ज़रूरतें पूरी न होने से तबाह है, दूसरी ओर आवश्यकता होते हुए भी क्रय-शक्ति के अभाव में ज़रूरत का सामान खरीदने में असमर्थ है। इस लिए बाजार में माँग नहीं है, उद्योग स्थापित क्षमता से काफी कम (लगभग 70%) पर ही उत्पादन कर रहे हैं। अतः न पूँजीपति निवेश कर रहे हैं और न ही रोज़गार पैदा हो रहा है। बल्कि पूँजीपति मालिक अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए और भी कम मज़दूरों से और भी कम मज़दूरी पर ज़्यादा से ज़्यादा काम और उत्पादन कराना चाहते हैं। इसलिए पिछले कुछ समय में देखिये तो आम श्रमिकों के ही नहीं अपने को सफ़ेद कॉलर मानने वाले अभिजात श्रमिकों के भी काम के घण्टों में लगातार वृद्धि हो रही है।

इस संकट से निकलने का कोई तरीका न पिछली मनमोहन सरकार के पास था न अब की मोदी-जेटली की जोड़ी के पास और न ही बहुत से लोगों की उम्मीद आईएमएफ़ वाले रघुराम राजन के पास है, क्योंकि आख़िर इन सबकी नीतियाँ एक ही हैं – पूँजीपति वर्ग की सेवा! और सिर्फ ब्याज की दरें घटाने-बढ़ाने से बाज़ार माँग को नहीं बढ़ाया जा सकता, क्योंकि जिसकी जेब में पैसा है वही ब्याज के बारे में सोच सकता है ना भाई! ग़रीब मज़दूर-किसानों की कंगाली की हालत तो हम पहले से ही जानते हैं लेकिन थोड़ी बेहतर हालत वाले मध्यम वर्गीय लोग जो पहले कुछ बचत कर लेते थे उनकी स्थिति भी अब ऐसी हो गयी है कि बैंकों में जमा होने वाले धन की वृद्धि दर घटकर पिछले 60 सालों में सबसे कम सिर्फ़ 9% पर आ गयी है! अर्थव्यवस्था की ऐसी स्थिति में न नये उद्योग धन्धे लगने वाले हैं, न नये रोज़गार मिलने वाले हैं। यही है 'अच्छे दिनों' की हक़ीक़त; बाकी भाषण तो बस भाषण हैं, उनका क्या! उनसे जनता की ज़िन्दगी नहीं सुधरती।

बुरे दिनों की एक और आहट – बजरंग दल के शस्त्र प्रशिक्षण शिविर

(पेज 15 से आगे)

बड़े स्तर पर साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का खेल ही था। साधारण हिन्दुओं के मनों में मुसलमानों के खिलाफ़ साम्प्रदायिक नफ़रत का जहर घोल कर भाजपा विधानसभा चुनावों में भी इसी ढंग से जीत हासिल करना चाहती है। बजरंग दल के बैनर तले लगाये जा रहे शिविर आर.एस.एस. व भाजपा की इसी साजिश का हिस्सा हैं।

वास्तव में सभी धर्मों से सम्बन्धित आतंकवादी जनता के दुश्मन हैं। हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी संगठन आर.एस.एस. दुनिया के सबसे ख़तरनाक आतंकवादी संगठनों में से एक है। यह साधारण हिन्दुओं को अन्य धर्मों के लोगों (खासकर मुसलमानों व ईसाइयों) के खिलाफ़ भड़काता है। योजनाबद्ध ढंग से अल्पसंख्यकों के कत्लेआमों को अंजाम देता है। गुजरात व मुज़फ़्फ़रनगर में मुसलमानों के कत्लेआम, सन् 84 में सिखों के कत्लेआम में इसकी भागीदारी, उड़ीसा में ईसाइयों का कत्लेआम सिर्फ़ कुछ उदाहरणे हैं। लाखों लोग आर.एस.एस. और इसके संगठनों के आतंकवाद का शिकार हो चुके हैं। लेकिन इसकी कार्रवाईयों पर कोई रोक नहीं है। यह भारत सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त आतंकवादी संगठन है!! इसे खुलेआम क़त्लेआम की तैयारी के अधिकार प्राप्त हैं। हथियारों की ट्रेनिंग के शिविर लगाने की पूरी छूट है। अब तो ख़ुद सरकार ही इन्हीं की है। मालेगाँव बम धमाकों के दोषी आर.एस.एस. से जुड़ लोग एक-एक करके छोड़े जा रहे हैं। गुजरात में क़त्लेआम के दोषी आज़ाद घूम रहे हैं (एक तो प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठा है)!

आने वाला समय और भी भयानक होने वाला है। हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी धार्मिक अल्पसंख्यकों से भी बड़े दुश्मन कम्युनिस्टों, जनवादी कार्यकर्ताओं, तर्कशील व धर्मनिरपेक्ष लोगों आदि को मानते हैं। इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि हिन्दुत्व कट्टरपंथी फासीवादी भारत में इन सभी पर हमले की तैयारी कर रहे हैं क्योंकि यही लोग इनके नापाक मंसूबों की राह में सबसे बड़ी बाधा हैं। लेकिन स्वाल यह है कि हम इसके मुकाबले की क्या तैयारी कर रहे हैं?

— रणबीर

बुरे दिनों की एक और आहट – बजरंग दल के शस्त्र प्रशिक्षण शिविर

हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथी संगठन बजरंग दल द्वारा उत्तर प्रदेश में विभिन्न जगहों पर "आत्मरक्षा शिविर" लगाये जा रहे हैं। आतंकवादियों से लड़ने के प्रशिक्षण देने के नाम पर लगाये जा रहे इन शिविरों का असल मक़सद बड़े पैमाने पर आतंकवाद को अंजाम देना है। शिविर में आतंकवादियों को मुसलमानों के तौर पर पेश किया जा रहा है। आर.एस.एस. और उससे जुड़े संगठन लगातार मुसलमानों को आतंकवादियों के रूप में पेश करते रहते हैं। अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ साम्प्रदायिक नफ़रत पैदा करके दंगे तो ये कराते ही रहे हैं, अब आम हिन्दू नौजवानों को हिन्दुत्ववादी आतंकवाद के रास्ते पर धकेलने के लिए संगठित प्रयास भी इन्होंने शुरू कर दिये हैं। बजरंग दल के इन शिविरों का असली मक़सद अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ गहरी नफ़रत पैदा करना, उनके निर्मम कत्लेआम के लिए मानसिक तौर पर तैयार करना और इसके लिए हथियारबन्द प्रशिक्षण देना है। इन शिविरों में तलवार, बन्दूक, छुरा, लाठी आदि चलाने आदि की ट्रेनिंग दी जा रही है। उत्तर प्रदेश में अब तक अयोध्या, नोयडा, सिद्धार्थनगर आदि जगहों पर ऐसे शिविर लगाये जा चुके हैं।

मुसलमानों व अन्य धार्मिक अल्पसंख्यकों में दहशत पैदा कर रहे इन शिविरों के मामले में अब तक सिर्फ एक गिरफ्तारी हुई है। उत्तर प्रदेश की अखिलेश सरकार सिर्फ दिखावे के लिए विरोध कर रही है। राज्य की सत्ताधारी समाजवादी पार्टी हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थियों की काली करतूतों का फ़ायदा मुसलमानों को अपने पक्ष में करने के लिए उठाती रही है। इस मामले में भी ऐसा ही हो रहा है। अगले साल राज्य में विधानसभा चुनाव होने जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों चुनाव नज़दीक आ रहे हैं त्यों-त्यों राज्य में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाने की साजिशें तेज़ हो रही हैं।

पिछले लोकसभा चुनावों में भाजपा की उत्तर प्रदेश में बड़ी कामयाबी के पीछे ''लव जिहाद'', ''गौहत्या'', ''धर्म परिवर्तन'' आदि हौवे खड़े करके

दिल्ली के सीलमपुर के ई-कचरा मज़दूरों की ज़िन्दगी की ख़ौफ़नाक तस्वीर

(पेज 7 से आगे)

में वही कम्पनियाँ ई-कचरे के निस्तारण को लेकर पूरी तरह उदासीन रहती हैं। यही नहीं ये कम्पनियाँ अकूत मुनाफ़ा निचोड़ने के लिए इलेक्ट्रॉनिक्स गैजेट्स के नित-नये मॉडल बाज़ार में लाती हैं और विज्ञापनों के ज़रिये लोगों में माल अन्धभक्ति की संस्कृति व मानसिकता पैदा की जाती है जिसका असर यह होता है कि लोग पुराने मॉडलों को ज़्यादा से ज़्यादा इस्तेमाल करने की बजाय उनके बदले नये-नये मॉडल ख़रीदते रहते हैं और इस प्रकार पुराने मॉडल ई-कचरा में तब्दील होते रहते हैं। पूँजीवादी समाज में इन इलेक्ट्रॉनिक्स कॅम्पनियों के अस्तित्व में बने रहने की शर्त ही यही है कि वे लगातार इलेक्ट्रॉनिक सामान और इलेक्ट्रॉनिक कचरा पैदा करती रहें। कहने की ज़रूरत नहीं है कि ये कम्पनियाँ पूरे समाज में जो ज़हर घोलती हैं उसकी ज़िम्मेदारी उनपर न आये इसके लिए नेताओं और उच्च अधिकारियों की जेबें ग़रम करती हैं।

ऐसे में यह सवाल लाज़िमी है कि इस समस्या का समाधान क्या हो। निश्चित रूप से इस माँग पर जनमत बनाया जाना चाहिए कि इलेक्ट्रॉनिक कम्पनियों द्वारा ई-कचरे के निस्तारण की ज़िम्मेदारी उठाने के लिए नये क़ानून बनें और उन्हें सख़्ती से लागू किया जाये। साथ ही ई-कचरा निस्तारण उद्योग में लगे मज़दूरों को सुरक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैय्या करानी चाहिए। लेकिन ई-कचरे की समस्या के जड़मूल समाधान के बारे में सोचने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समस्या के लिए समाज का पूँजीवादी ढाँचा ही ज़िम्मेदार है, जिसमें चीज़ें लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए नहीं बल्कि समाज के मुट्ठीभर लोगों की मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए पैदा की जाती हैं, जहाँ ज़रूरतें कृत्रिम तौर पर विज्ञापनों और मार्केटिंग के ज़रिये पैदा की जाती हैं। यह सामाजिक-आर्थिक ढाँचा खदानों से खनिज निकालने से लेकर कारख़ानों में चीज़ों के उत्पादन से होते हुए उन चीज़ों से पैदा होने वाले कचरे के निस्तारण तक की पूरी प्रक्रिया के हर चरण पर मेहनतकश आबादी को तबाह-बरबाद करने के साथ ही समूचे पर्यावरण का विनाश करने पर आमादा है। ऐसे में जो लोग वास्तव में ई-कचरे जैसी समस्या के बारे में चिन्तित हैं उन्हें उत्पादन की प्रक्रिया के एक विशेष क्षेत्र पर ही अपना ध्यान सीमित करने के बजाय समूची उत्पादन प्रणाली और उन उत्पादन सम्बन्धों के बारे में गम्भीरता से सोचना चाहिए जिसमें ई-कचरे जैसी समस्या पैदा होती ही रहेगी। यानी इस समस्या को जड़ से तभी ख़त्म किया जा सकता है जब ऐसा सामाजिक-आर्थिक ढाँचा बनाया जाये जो लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हो न कि मुनाफ़ा कमाने के लिए। केवल ऐसी ही व्यवस्था में ई-कचरा निकलने को भी नियंत्रित किया जा सकेगा और मेहनतकश आबादी की ज़िन्दगी में ज़हर घोले बगैर ई-कचरे के निस्तारण का उचित प्रबन्ध भी सम्भव हो सकेगा।

— आनन्द सिंह

कविता

अनिल सदा

मधुबनी की सुदूर छोटी सी दलित बस्ती के / भूमिहीन युवा खेत मज़दूर / अनिल सदा जी का जीवन ख़तरे में है / महामहिम प्रणव दा, सोनिया जी, बाबू नरेंद्र मोदी, युवा नेता राहुल गांधी जी, रामविलास जी, / रोते को हँसाने वाले लालू प्रसाद जी, नीतीश जी, सबके चहेते उदीयमान अरविंद केजरीवाल जी / हमारे नये मुख्यमंत्री जीतन मांझी जी / और हर खासोआम को सूचित किया जाता है कि / अभी बस आठ दिनों पहले / हमारे युवा मज़दूर गाँव से लुधियाने गये थे / उनके साथ मज़दूरों का पूरा काफिला रवाना हुआ था / ठेकेदार भी साथ था / बड़े अफसोस की बात है / कि लुधियाने में ट्रेन रुकते ही / उनकी तबीयत अचानक बिगड़ गयी / उन्हें लगा जैसे उनके मुंह में धूल उड़ रही हो / जल्दी ही वे ख़ून की उल्टियाँ करने लगे / अपना नुकसान जोड़कर ठेकेदार बड़ा परेशान हुआ / जो अनिल जी की अनिच्छा के बावजूद / उन्हें लुधियाने ले आया था / दुख की इस महान घड़ी में / मुल्क के हर आदमी / और बिहार के हर सुसंस्कृत सुशिक्षित छोटे-बड़े ज़मीन मालिकों / के लिए ये जानना जरूरी है / कि युवा मज़दूर की हालत ज़्यादा बिगड़ने पर / ठेकेदार दुम दबाकर भाग निकला / और तब मज़दूरों ने फैसला किया / कि देश के गौरव अनिल सदा जी को क्यों न गाँव वापस भेज दिया जाये / क्योंकि लुधियाने में उनकी सेवा और इलाज का अच्छा इंतजाम नहीं हो सकता / मिलजुल कर रकम इकट्ठी कर ली गयी / युवा मज़दूर गाँव वापस भेज दिये गये / मगर चिन्ताजनक बात ये है / कि गाँव में ज़मीन और शहर में मकान बनाकर रहने वाले भाइयो कि / अनिल सदा जी का इलाज अभी तक शुरू नहीं हो पाया है / उनकी निसहाय पत्नी का कहना है / यहाँ न दवा है न दाना / पहले से सर पर कर्ज का बोझ है / कोई उधार देने वाला नहीं / खेत पानी में डूबे हैं / गाँव में कोई काम नहीं है / अनिल जी मर गये तो मर ही गये / जीये बचे तो सधाएंगे कर्ज / देश की चिन्ता करने वाले / आप सब विद्वानों, विशेषज्ञों को / जो ज़मीन मालिक होने का अन्दरूनी गौरव छुपाते हैं / खेत बँटाई पर देते हैं / और किसान के रूप में दुनिया से विदा होने की इच्छा नहीं रखते / मालूम हो कि / हमारे युवा प्रवासी भूमिहीन मज़दूर अनिल सदा जी के तीन जीवित बच्चे हैं / चार मर चुके हैं / आप सज्जनों की जानकारी के लिए / उनके नाम / बड़ा रामसेवक था / मझला लक्ष्मण / सझला अजय कुमार / और चौथे का नाम न पत्नी को याद है / न अनिल जी इस हालत में हैं कि वे बता सकें / एक ही साल फागुन भादो अगहन चैत में वे चारों मरे थे / कालाअजार से / और बच्चों की मौत से एक साल पहले / अनिल जी के मज़दूर माँ पिता का देहान्त हुआ था / अनिल जी की पत्नी बताती हैं / कि उनके बदन में भी ख़ून नहीं है / ये राष्ट्रीय शोक की घड़ी है / बड़े दुख के साथ बताना पड़ रहा है कि / किसी तरह जीवित रहने / फिर भी मुल्क के कई राज्यों में जाकर / कृषि और निर्माण उद्योग में / भारी योगदान देने वाले / हमारे सम्मानित / मरणासन्न युवा मज़दूर अनिल सदा जी की / खोज-खबर लेने के लिए हमारे सांसदों को / फुरसत नहीं मिल पायी है / विधायकों को उनके गाँव लौट आने का पता नहीं है / जबकि अनिल सदा जी के गाँव / और आस-पास की ज़मीन से / उनके पटना वाले राजकीय निवास पर / बढ़िया अनाज हर साल पहुँचता है / यह बड़ा ही दुखद है / कि धरती के सच्चे लाल / अपने अनिल सदा जी के शोक सन्तप्त परिवार को / इस नाज़ुक घड़ी में दिलासा देने वाला कोई नहीं / आपको जानकर हैरत नहीं होगी कि / कि हमारे अनिल सदा जी / उन बहुत थोड़े कर्मठ और लगनशील लोगों में हैं / जो दस साल की उम्र से / बाल मज़दूर के रूप में / हमारी आपकी सेवा करते आ रहे हैं / उनका इलाज क़ायदे से जसलोक या अपोलो में होना चाहिए था / इससे राष्ट्र / और आप सब विद्वान राष्ट्रभक्तों का गौरव बढ़ता / उनका रोज़ स्वास्थ्य बुलेटिन जारी होना चाहिए था / इससे लोकतंत्र की शान बढ़ती / मगर इसे देश का दुर्भाग्य ही कहेंगे कि / उनकी अकाल मौत पर / जब क्रान्ति का बिगुल बज उठना चाहिए / मुनादी करके उन्हें किसी तरह बचाने की / सबसे गुज़ारिश की जा रही है / बहरहाल अनिल सदा जी मर कर भी अमर रहेंगे / उनका नाम उन करोड़ों प्रवासी मज़दूरों की तरह / इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा / जो कब पैदा लेते हैं / कब कहाँ शहीद हो जाते हैं / इसका पता हम सुशिक्षित ज़मीन मालिकों को / जो किसान के रूप में धरती से विदा होना नहीं चाहते / और प्रवासी मज़दूरों की तबाही में / अपनी कोई भूमिका नहीं देखते / पता ही नहीं चलता

— अमिताभ बच्चन

(कवि अमिताभ बच्चन का इसी नाम के फिल्मी अभिनेता से कोई सम्बन्ध नहीं है)

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2014-2016
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 20, प्रत्येक माह

"अच्छे दिनों" की बुरी हक़ीक़त!

उद्योग सुस्त, रोज़गार सृजन पस्त, महँगाई बढ़ी, आमदनी घटी

– मुकेश त्यागी

मई 2014 में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली भाजपा सरकार आई थी तो जनता ख़ासकर नौजवानों को बड़े सपने दिखाये गये थे, वादे किये गये थे – देश का चहुँमुखी विकास होगा, आर्थिक तरक़्क़ी की रफ़्तार तेज़ होगी, हर साल दो करोड़ नौजवानों को रोज़गार मिलेगा। अभी 31 मई को भी सरकार ने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की वृद्धि दर के बढ़ने की घोषणा द्वारा यही बताने की कोशिश की – बताया गया कि मार्च 2016 में खत्म हुई तिमाही में जीडीपी 7.9% की दर से बढ़ी और पूरे 2015-16 के वित्तीय वर्ष में 7.6% की दर से। टीवी और अख़बारों द्वारा ज़बर्दस्त प्रचार छेड़ दिया गया कि इस सरकार के निर्णायक और साहसी आर्थिक सुधारों की वजह से अर्थव्यवस्था संकट से बाहर आ गयी है; भारत दुनिया की सबसे तेज़ी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्था बन गया है और अब तेज़ी से विकास हो रहा है जिससे जनसाधारण के जीवन में भारी समृद्धि आने वाली है। आइये हम इन दावों और तथ्यों को थोड़ा गहराई से जाँचते हैं ताकि इसकी असलियत सामने आ सके।

अगर जीडीपी की वृद्धि की तस्वीर को ध्यान से देखें तो सरकार के जीडीपी में 7.9% वृद्धि के दावे पर ही सवाल उठ रहा है – कुल 221,744 करोड़ रुपये की वृद्धि में सबसे बडा आइटम है 'गड़बड़ी' या 'विसंगतियाँ' – सारी वृद्धि का 51% यही है; इसे निकाल दीजिये तो यह वृद्धि सिर्फ 3.9% ही रह जाती है। इन 'गडबड़ियों' की कोई व्याख्या नहीं दी गयी है। फिर इसको क्या समझा जाये? जीडीपी में वृद्धि के इस दावे पर कैसे भरोसा किया जाये? ख़ुद भारतीय पूँजीपति वर्ग के मुखपत्र 'इकॉनोमिक टाइम्स' को भी 3 जून के अपने एक लेख '7.6%, भारत सबसे तेज़ वृद्धि वाली अर्थव्यवस्था या सर्वश्रेष्ठ आँकड़ों की हेराफेरी' में कहना पडा कि ''7.6% वृद्धि - नंगा राजा को ख़ुश करने के लिये आँकड़ों की बावली हेराफेरी है'। काफ़ी छीछालेदर के बाद सरकार ने भी बेशर्मी के साथ यह स्वीकार किया कि विकास के दिये गये आँकड़ों में ग़लतियाँ हैं।

एक और पक्ष को देखें तो इस वृद्धि का दूसरा बडा हिस्सा है निजी उपभोग में 127,000 करोड़ का इज़ाफ़ा! लेकिन अगर निजी उपभोग इतनी तेज़ी से बढा है तो ये उपभोग लायक वस्तुएँ आयीं कहाँ से क्योंकि सरकार द्वारा ही प्रस्तुत दूसरे आँकड़े बताते हैं कि इस दौर में औद्योगिक उत्पादन सिर्फ 0.1% बढा है! दुनिया के किसी देश में आजतक ऐसा किसी अर्थशास्त्री ने नहीं पाया कि बगैर औद्योगिक उत्पादन बढ़े ही जीडीपी इतनी तेज़ी से बढ़ जाये। इसी बात को दूसरी तरह से समझते हैं – जीडीपी के आँकड़े यह भी बताते हैं कि स्थायी पूँजीगत निर्माण अर्थात अर्थव्यवस्था में पूँजी निवेश 17 हज़ार करोड़ घट गया है। सवाल उठना लाज़िमी है कि अगर अर्थव्यवस्था में इतना सुधार और तेज़ी है तो सरकार व निजी पूँजीपति दोनों नया पूँजी निवेश क्यों नहीं कर रहे हैं? क्या इसलिये कि उन्हें ख़ुद इस प्रचार की सच्चाई पर भरोसा नहीं? 'इकॉनोमिक टाइम्स' इसका मज़ाक उड़ाते हुए कहता है कि 'निजी उपभोग में आकाश छूने वाली 127,000 करोड़ की वृद्धि दिखायी गयी है। हम ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानते जिसका उपभोग हाल के दिनों में इतना बढ़ा हो। हो सकता है टीसीए अनन्त (भारत के सांख्यिकी प्रधान) या उसके बॉस जेटली या उसके बॉस के बॉस नरेन्द्र मोदी के ऐसे कुछ दोस्त हों जिनका उपभोग इतना बढा हो'। ऐसे भी देखा जाये तो जब देश में एक तरफ भारी सूखे की स्थिति है, देश के निर्यात में लगातार 15 महीने से गिरावट आ रही है, नौजवानों को नये रोज़गार नहीं मिल रहे हैं, जिनके पास रोज़गार है उनका वेतन महँगाई के मुकाबले नहीं बढ़ रहा है, सभी को मालूम है कि किसानों की आर्थिक दशा बेहद संकट में है, सरकार ख़ुद संसद में बता रही है कि खेतिहर श्रमिकों की मज़दूरी पिछले दो वर्षों से गिर रही है, तब ऐसी स्थिति में देश का ऐसा कौन सा तबका है जिसका उपभोग इतनी तेज़ी से बढ़ गया कि उसकी वजह से जीडीपी में इतना भारी उछाल आया है! इन सवालों के उठने पर ख़ुद प्रधान आँकड़ेबाज़ टीसीए अनन्त को स्वीकार करना पड़ा कि इन आँकड़ों की 'गुणवत्ता' में बहुत कमियाँ हैं।

फिर सरकार एक और हैरतअंगेज़ तर्क लेकर आयी कि कृषि में वृद्धि दर 2.3% है – क्या देश के लगभग एक-तिहाई हिस्से में दो साल से चल रहे भयंकर सूखे की स्थिति में कोई इस बात का भरोसा करेगा क्योंकि कृषि में ऐसी वृद्धि सिर्फ अच्छे मानसून के सालों में ही देखी गयी है। लेकिन कुछ दूसरे तथ्यों के आधार पर इस बात को जाँचते हैं। सरकार कहती है कि गेहूँ का उत्पादन बढ़कर 86 लाख टन हुआ है लेकिन मण्डियों में अब तक पिछले वर्ष के 29 लाख टन के मुकाबले 25 लाख टन गेहूँ ही आया है तो फिर बढ़ा हुआ उत्पादन कहाँ गया! कोई कहे कि भारत के किसान एक साल में इतने अमीर हो गये कि अच्छी क़ीमत के इन्तजार में फसल को दबाये बैठे हैं तो उन्हें शायद दिमागी डॉक्टर की ज़रूरत है। कृषि में इस 2.3% वृद्धि को आज की स्थिति में सभी कृषि विशेषज्ञ अविश्वसनीय मान रहे हैं।

एक और तरह से भी स्थिति को समझ सकते हैं – बैंक क्रेडिट (कर्ज़) में वृद्धि पिछले वर्ष 8-9% रही है जिसका भी बडा हिस्सा पर्सनल/हाउसिंग/क्रेडिट कार्ड कर्ज़ का है, औद्योगिक नहीं, बल्कि अप्रैल में तो औद्योगिक कर्ज़ में वृद्धि शून्य है! मतलब ख़ुद भारतीय कारोबारी नया निवेश नहीं कर रहे – उन्हें सरकारी योजनाओं के ऐलान से मतलब नहीं क्योंकि अर्थव्यवस्था की ज़मीनी हालत पर उन्हें भरोसा नहीं है! इसीलिये जीडीपी में स्थायी पूँजी निर्माण नये पूँजी निवेश के मुकाबले पूँजी ह्रास (कमी) ज़्यादा है। असल में कोई भी पूँजीपति सरकार के नारों के असर में या किसी झोंक में आकर उद्योग नहीं लगाता। उद्योग लगाने का मकसद होता है अधिक से अधिक मुनाफ़ा। अगर मुनाफ़े का भरोसा न हो तो किसी योजना या नारे की घोषणा से कुछ नहीं होता। इसीलिये प्रधानमंत्री मोदी की मेक इन इंडिया, स्टार्ट अप, स्टैंड अप, आदि सब योजनाएँ तो गयीं पानी में!

दूसरे, अगर अर्थव्यवस्था की तस्वीर इतनी ही चमकदार है तो उद्योगों द्वारा बैंकों से लिये गये कर्ज़ इतनी तेज़ी और भयंकर मात्रा में क्यों डूब रहे हैं? ऐसे संकटग्रस्त कर्ज़ की रकम 8 लाख करोड़ पर पहुँच चुकी है और मॉर्गन-स्टैनले आदि विश्लेषक संस्थाओं के अनुसार 10 लाख करोड़ तक जाने की आशंका है। अगर देश तरक़्क़ी कर रहा है, सबसे तेज़ अर्थव्यवस्था है, जनता के उपभोग में भारी वृद्धि हो रही है, बाज़ार में माँग बढ़ रही है, व्यवसाय तरक़्क़ी कर रहा है तो कॉरपोरेट जगत लिये गये कर्ज़ को दबाकर क्यों बैठा है? यह बात सच है कि इसका एक हिस्सा तो पिछले व वर्तमान शासकों के संरक्षण में विजय माल्या या विनसम डायमंड के जतिन मेहता जैसों के द्वारा की गयी सीधी धोखाधड़ी है जिनको स्वयं सरकारी एजेंसियों के संरक्षण में देश से भाग जाने का मौका दिया गया लेकिन यही पूरी सच्चाई नहीं। ख़ुद रिज़र्व बैंक के गवर्नर रघुराम राजन का कहना है कि इन डूबते कर्ज़ों का मुख्य कारण धोखाधड़ी नहीं बल्कि 'अर्थव्यवस्था में गम्भीर सुस्ती' है! अब कौन-सी बात पर विश्वास किया जाये – सबसे तेज़ बढ़ती अर्थव्यवस्था या गम्भीर सुस्ती की शिकार अर्थव्यवस्था?

ख़ुद वित्त मंत्री अरुण जेटली 27 मई को 'इकॉनोमिक टाइम्स' में छपे अपने इंटरव्यू में कहते हैं कि 'हम माँग की अनुपस्थिति में मन्दी के वातावरण में संघर्ष कर रहे हैं और इसलिए क्षमता का विस्तार नहीं हो रहा है। जब अधिक माँग होती है तब ऐसा (क्षमता विस्तार) होता है और भारी मात्रा में रोज़गार सृजित होते हैं'। आह, कितना भी छिपाओ, सच बाहर आ ही जाता है!

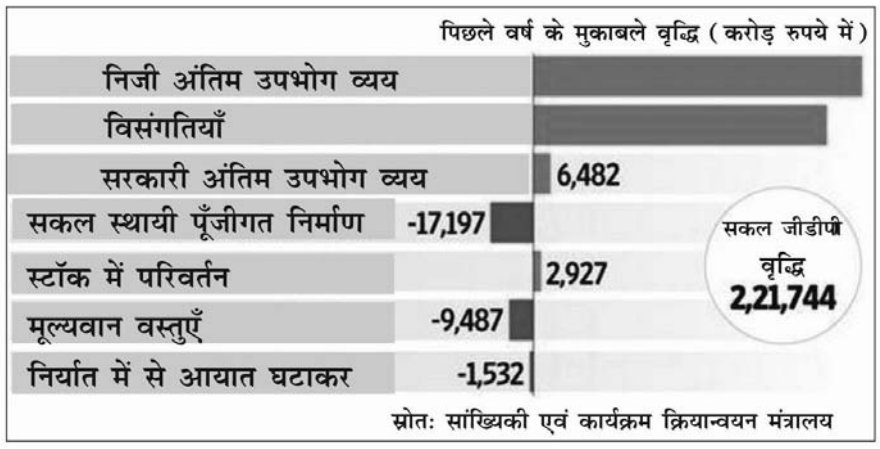

अब हम इसे ग़ौर से देखें कि जीडीपी में जो वृद्धि दिखायी दे भी रही है उसका स्रोत क्या है? वह क्या वास्तव में अर्थव्यवस्था के ढाँचे में किसी सुधार की तरफ इशारा करती है या कुछ और? ध्यान से देखें तो इस वृद्धि में मुख्य कारक हैं एक तो तेज़ी से बढते अप्रत्यक्ष कर (सर्विस टैक्स, एक्साइज़, वैट, आदि) – इस सरकार ने सिर्फ पेट्रोलियम पर ही 6 बार टैक्स बढ़ाया है। सर्विस टैक्स भी 2014 के 12.36% से बढ़कर अब 15% हो गया है। इन करों के संग्रह से सब्सिडी घटाकर होने वाली सरकारी आमदनी भी जीडीपी की वृद्धि के रूप में दर्ज की जाती है। लेकिन इसका अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक असर ही पड़ता है क्योंकि ये टैक्स जनता की वास्तविक आमदनी अर्थात उसकी क्रय शक्ति को कम करते हैं और पहले से ही सिकुड़ती माँग से जूझ रही अर्थव्यवस्था में माँग को और कमज़ोर ही करेंगे।

जीडीपी में दिखने वाली वृद्धि (निजी उपभोग) का दूसरा कारक है अर्थव्यवस्था में फुलाया जा रहा नया बुलबुला; जिसके 'अच्छे दिनों' की उम्मीद के प्रचार की चकाचौंध में मध्यम वर्ग का मोदी-भक्त हिस्सा फँस रहा है क्योंकि वह इसे हक़ीक़त मान बैठा है! और बुलबुला फूटने पर यह तबका बिलबिलायेगा! असलियत से अच्छी तरह वाकिफ़ पूँजीपति वर्ग तो ना कर्ज़ ले रहा है ना ही नया निवेश कर रहा है लेकिन अच्छे दिनों में आमदनी बढ़ने की उम्मीद लिये मध्यम वर्ग ने अभी से कर्ज़ लेकर खर्च करना शुरू कर दिया है। 2008 के वित्तीय संकट के बाद क्रेडिट कार्ड पर लिया जाने वाला कर्ज़ बहुत घट गया था लेकिन अब फिर से क्रेडिट कार्ड पर कर्ज़ 31% की सालाना दर से बढ़ रहा है जबकि इंडस्ट्री को कर्ज में इज़ाफ़ा ज़ीरो है। मोदी जी के 'अच्छे दिनों' की आस में क्रेडिट कार्ड या पर्सनल लोन लेकर खर्च करने वाला यह मध्यम वर्ग समझ नहीं पा रहा है कि यह कर्ज़ा एक दिन वापस करना होगा - लेकिन रोज़गार विहीन वृद्धि के दौर में यह कर्ज़ वापस करने का पैसा आयेगा कहाँ से? 2008-09 के वित्तीय संकट के पिछले कड़वे तजुर्बे को अपने लालच में भूल रहे हैं ये!

रोज़गार : दावे, उम्मीदें और वास्तविकता

आइये अब नौजवानों की रोज़गार की उम्मीदों की वास्तविक स्थिति पर नज़र डालते हैं। कुछ दिन पहले ही हमने ख़बर देखी थी कि कैसे हर वर्ष नये रोज़गार सृजन की दर कम हो रही है और पिछले 8 वर्षों में वर्ष 2015 में अर्थव्यवस्था के आठ सबसे ज़्यादा रोज़गार देने वाले उद्योगों में सबसे कम केवल 1.35 लाख नये रोज़गार ही पैदा हुए। सरकारी लेबर ब्यूरो की रिपोर्ट के अनुसार इसके मुकाबले 2013 में 4.19 लाख और 2014 में 4.21 लाख नये रोज़गार सृजित हुए थे। अगर लेबर ब्यूरो के आँकड़ों को ग़ौर से देखें तो दरअसल पिछले साल की दो तिमाहियों यानी अप्रैल-जून और अक्टूबर-दिसम्बर 2015 में क्रमशः 0.43 व 0.20 लाख रोज़गार कम हो गये!

कुछ लोग इसे सिर्फ़ मोदी-नीत भाजपा सरकार की नीतियों की असफलता बता कर रुक जा रहे हैं लेकिन हम और ध्यान से देखें तो यह इस या उस नेता, इस या उस पार्टी का सवाल नहीं है, असल में तो यह पूँजीवादी व्यवस्था के मूल आर्थिक नियमों का नतीजा है। रिजर्व बैंक के एक अध्ययन पर आधारित यह विश्लेषण काबिल-ए-ग़ौर है कि

1999-2000 में अगर जीडीपी 1% बढ़ती थी तो रोज़गार में भी 0.39% का इजाफा होता था। 2014-15 तक आते-आते स्थिति यह हो गयी कि 1% जीडीपी बढ़ने से सिर्फ 0.15% रोज़गार बढ़ता है। मतलब जीडीपी बढ़ने, पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बढ़ने से अब लोगों को रोज़गार नहीं मिलता। इसलिए जब कॉरपोरेट मीडिया अर्थव्यवस्था में तेज़ी-खुशहाली बताये तो भी उससे आम लोगों को ख़ुश होने की कोई वजह नहीं बनती।

रोज़गार की स्थिति पर आँखें खोलने वाले कुछ अन्य तथ्य नीचे दिये गये हैं :

1. संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार 1991-2013 के बीच भारत में 30 करोड़ रोज़गार चाहने वालों में से आधे से भी कम अर्थात 14 करोड़ को ही काम मिल सका।

2. जिनको काम मिला भी उनमें से 60% को साल भर काम नहीं मिलता।

3. कुल रोज़गार में से सिर्फ 7% ही संगठित क्षेत्र में हैं बाकी 93% असंगठित क्षेत्र के कामगारों को न कोई निश्चित मासिक वेतन मिलता है और न

(पेज 14 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक: सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पाकीय पता: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006